Chapter-7

सप्तम अध्याय

राजनीतिक - राष्ट्रीय पक्ष

प्रस्तावना

गांधीजी का राजनीतिक-राष्ट्रीय दृष्टिकोण

सियारामशरणजी के काव्य में व्यक्त राजनीतिक-राष्ट्रीय स्वरूप

सत्याग्रह का महत्त्व एवं सत्याग्रही के निर्भय रूप का अंकन

उपसंहार ।

प्रस्तावना :

मानव जीवन में जिस प्रकार सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है उसी प्रकार राजनीति से भी मनुष्य अपने को अलिप्त नहीं रख सकता। राजनीति में साधारणतया नीतिपूर्ण आचरण को महत्त्व नहीं दिया गया। पाश्चात्य सभ्यता के विकास के साथ साथ यह भावना दृढ़ होती गई कि बिना छलकपट, चालाकी एवं धोखेबाजी के राजनीति सफल नहीं हो सकती। प्रत्यक्ष रूप में राजनीति की आड़ में भले ही विभिन्न देशों के राजनीतिज्ञों ने विश्व बंधुत्व, परस्पर सहयोग एवं मैत्री की भावना को अपनाने पर जोर दिया हो, फिर भी वे दूसरे देशों की बहुविध कमजोरियों एवं विवशताओं का लाभ लेने से नहीं चुके हैं। खासकर जो देश आज से पचास वर्ष पहले पराधीन थे और स्वतंत्र होने के बाद भी अर्धविकसित एवं आर्थिक रूप से कमजोर रहे, इस नीति का शिकार अब भी बनाये जाते हैं। भारत पर अंग्रेजी शासन भी इसी भेद नीति के कारण कायम रहा। ऐसे में गांधीजी ने राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण कर राजनीति के स्वरूप को ही बदल दिया।

गांधीजी का राजनीतिक-राष्ट्रीय दृष्टिकोण :

वस्तुत: महात्मा गांधी की राजनीति राष्ट्रीय भावना से ही प्रेरित थी। वे राजनीति को छल कपट से दूर की वस्तु समझते थे और राजनीति में धर्म का समावेश आवश्यक मानते थे। मानवीय भावनाओं के कारण वे दलगत राजनीति में भी पूर्ण नैतिकता का आग्रह रखते थे। धर्महीन राजनीति को वे मृतवत मानते थे। गांधीजी के राजनीति में प्रवेश करने से पूर्व राजनीति के बारे में लोगों की सामान्य मान्यता यही थी कि वही व्यक्ति राजनीति में सफल होता है जो न्याय अन्याय की दुविधाओं की परवाह नहीं करता। छलकपट, असत्य, हिंसा, षड्यंत्र आदि अनेक अमानुषिक कूटनीति की चालें चलना तो राजनीति के सामान्य अंग माने जाते थे किंतु गांधीजी ने सत्य, अहिंसा तथा विश्व बंधुत्व की भावना के आधार पर विदेशी सत्ता की विकराल शक्ति को चुनौती दी और विश्वभर के राष्ट्रों के सम्मुख यह आदर्श प्रस्तुत कर दिया कि घृणा को प्रेम से जीतो, हिंसा को अहिंसा से, बर्बरता को सत्य से जीता जा सकता है। इस प्रकार गांधीजीने अपने धर्मप्राण व्यक्तित्व एवं अहिंसात्मक मार्ग से राजनीति की पुरानी मान्यता को बदल दिया तथा राजनैतिक क्षेत्र को भी नीति, धर्मयुक्त बना दिया। इस प्रकार दूषित राजनीति भी उनके हाथ में आकर महत् बन गई।

सियारामशरणजी के काव्य में व्यक्त राजनीतिक-राष्ट्रीय स्वरूप :

द्विवेदी युगीन कवियोंने इसी राष्ट्रीय भावना को प्रधान स्वर दिया है। इस युग में एक ओर राजनीतिक चेतना बढ़ रही थी, तो दूसरी ओर सांस्कृतिक पुनरुत्थान का कार्य हो रहा था। इसीलिये इस युग के अधिकांश रचयिताओं ने देशभक्ति से परिपूर्ण राष्ट्रीय कविताएँ लिखीं। द्विवेदी युगीन कवियों ने अतीत गौरव के साथ साथ देश की वर्तमान दुर्दशा पर भी क्षोभ प्रकट किया। सियारामशरणजीने अपनी 'अनाथ' कृति में दीन-हीन कृषकों की करुण दशा का चित्र अंकित कर उनके प्रति संवेदना प्रकट की है। इन कवियों ने रामकृष्ण, अर्जुन, भीष्म आदि पौराणिक पुरुषों के चारित्रिक उदाहरणों के द्वारा अतीत का गौरवगान करके जनता में आत्मविश्वास एवं

आस्था पैदा की है। 'मौर्य विजय' में आर्य संस्कृति का गुणगान करके भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था ही प्रकट की गई है।

सियारामशरणजी यद्यपि एकांत साधक कवि रहे हैं, तथापि देशके आंदोलनों ने उन्हें पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है। "उन्होंने भारत की जिस किसी तत्कालिक घटना को लिया है उसे एक-देशीयता से ऊपर उठाकर बृहत्तर मानवीय मूल्य का स्तर प्रदान किया है। मात्र राष्ट्रीयता कवि को स्वीकार्य नहीं, चाहे कवि की कृति 'बापू' हो, चाहे 'नोआखली में,' चाहे 'उन्मुक्त' सर्वत्र गांधीवाद [जो कि राष्ट्रीय चेतना से जुड़कर भी सार्वभौम मानवता के लिये उच्चतर जीवन संदेश है] का उदात्त स्वर ध्वनित होता है। भारत की राष्ट्रीयता का सच्चा रूप उसके सामयिक प्रश्नों को सुलझाने के साथ साथ उसकी संस्कृति के मानवीय स्वर को पहचानने में है।"[१] वस्तुत: राष्ट्रीयता में आंतर्राष्ट्रीयता की भावना गांधीदर्शन की विशिष्टता है। यही विशेषता सियारामशरणजी के विचारों में भी पाई जाती है। जागरण के प्रसंग में वे परिवर्तन चाहते हैं, पर देशप्रेम के साथ वे विश्वप्रेम के भी इच्छुक हैं।

सियारामशरणजी ने राष्ट्रीय एकता के प्रति भी आग्रह प्रकट किया है। गांधीजी सभी धर्मावलम्बियों को साथ साथ रहने तथा राष्ट्रीय भावना से अनुप्रेरित होने का आहवान देते थे। उनका उपदेश था कि सब को परस्पर सुख दु:ख का भागीदार बनना चाहिए। सियारामशरणजी ने भी सभी धर्मावलम्बियों को भाईचारे का व्यवहार अपनाने का उपदेश दिया है :

"मनुज न हों तो हिन्दू, मुस्लिम,
बौध्द, जैन, सिख, ईसाई,
इसकी यह पीड़ा लें आकर
वे सब जिनमें हों भाई।"[२]

सियारामशरणजी की कविताओं में देशप्रेम की उत्कट भावना व्यक्त

---

१. हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम : डॉ. रामदरश मिश्र : पृ. ५९
२. नोआखली में : पृ. ४८

हुई है। उनकी लेखनी राष्ट्रीयता, देशप्रेम एवं मानव विकास की भावना से अनुप्राणित है।

नीतिपूर्ण राजनीति का आग्रह :

गांधीजी के समान सियारामशरणजी भी नीतिपूर्ण राजनीति के समर्थक थे। वे सत्य-अहिंसा के प्रभाव से भलीभाँति परिचित थे अत: उन्होंने हिंसा से विदग्ध जनजीवन के करुण दृश्य अंकित कर हिंसा की इस ज्वाला को प्रेम एवं अहिंसा के जल से शांत करनेका आग्रह प्रकट किया। वे समाज के साथ साथ राजनीतिक क्षेत्र में भी अहिंसा की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। अत: उन्होंने अपनी कविताओं में तत्कालीन अराजकतापूर्ण राजनीति पर कटु प्रहार किया है और अहिंसा की महिमा का गुणगान करते हुए प्रेम एवं अहिंसा का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयत्न किया है। 'अनाथ' कविता में मोहन नाम के एक निर्धन ग्रामीण कृषक के जीवन का मार्मिक चित्र अंकित करते हुए उन्होंने उस समय की अनैतिक राजनीति पर प्रहार किया है। मोहन अपने ही स्वदेशी बंधु से पीड़ित है, उसने समाज के इतने अत्याचार सहे हैं अब उसकी शक्ति क्षीण हो गई है :

"ऐसा अभागा मैं हुआ हूँ हाय रे! किस दोष से,
जो जल रहा हूँ रात दिन दुर्दैव के इस रोष से।
मेरे स्वदेशी बन्धु ही पीड़ित मुझे हैं कर रहे,
अन्याय अत्याचार ये अब तो नहीं जाते सहे।"[1]

कवि को इस छलछद्म एवं अत्याचार पूर्ण व्यवहार को देखकर दु:ख होता है। वह सोचता है कि क्या कभी इस अन्याय का अंत होगा या नहीं :

"अन्याय अत्याचार क्या यह बंद अब होगा नहीं,
क्या दूर भूतल से प्रभो, छल-छंद यह होगा नहीं?"[2]

---

१. अनाथ : पृ.२९
२. वही

स्पष्ट है कि कवि इस भूतल को छल छंद से मुक्त देखने को उत्सुक है। इसमें कवि ने अनैतिक राजनीति पर प्रहार कर मोहन के व्याज से तत्कालीन भारतीय जनता की दुर्दशा की ओर ही संकेत किया है।

'आत्मोत्सर्ग' में भी कवि ने क्रूर नौकरशाही, राजनीति के अनैतिक दावपेंच तथा धर्म के ठेकेदारों के झूठे आडम्बर पर कुठाराघात किया है। वास्तव में इस प्रकार के साम्प्रदायिक दंगों के पीछे किसी षड्यंत्रकारी का ही दिमाग काम करता है। षड्यंत्रकारी स्वयं परदे की ओट में रहकर जनता के बहाने गुण्डों से मनमानी करवाता है और जनता इस दावपेंच से बेखबर हो कठपुतली के समान उनके इशारे पर नाचकर स्वयं अपनी ही हानि करती है :

"पर भीतर से एक अन्य ही
चला रहा है चक्र कठोर,
और किसी के हाथों में है
उनकी कठपुतली की डोर।"[१]

इस प्रकार षड्यंत्रकारी गुण्डों को अपने इशारे पर कठपुतली की तरह नचाकर वातावरण को विषाक्त बनाते हैं। वास्तविक अपराधी तो वे षड्यंत्रकारी ही हैं जो स्वच्छंद घूमते रहते हैं और उनके कुकर्मों का भोग निर्दोष जनता बनती है। विपक्षी के लिये यही अभीष्ट है कि दो जातियाँ परस्पर एक दूसरे के खून की प्यासी हो जावें और उन दोनों की आपसी फूट में उसका अपना उल्लू सीधा हो। अंग्रेजों ने अपने हित के लिये ही हिन्दू-मुसलमान को आपस में मरने मारने पर उतारु कर दिया। यहाँ अंग्रेजों की इसी अधर्मपूर्ण नीतिकी ओर संकेत है :

"इष्ट यही तो है विपक्ष को,
तुम आपस में जूझ मरो,

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. १७

अपनों का ही शोणित पीकर
पशुओं को भी उठा धरो।"[1]

अंग्रेजों की इस दोहरी नीति का ही यह कुपरिणाम था कि साम्प्रदायिकता के नशे में अंधी होकर दोनों जातियाँ परस्पर हिंसा पर उतारु हो गईं। सर्वत्र अराजकतापूर्ण वातावरण फैल गया। दुष्ट एवं पतित इन गुण्डोंने प्रलय के समान सर्वत्र सर्वनाश कर डाला। अधिकारी गण भी अपने कर्तव्य से विमुख हो गुण्डों के इस कुकर्म को चुपचाप तमाशाइयों की तरह देखते रहे। यदि वे चाहते तो जनता को इस सर्वनाश से बचा सकते थे, किंतु उन्हें तो मानों उस अनर्थ से कोई सरोकार ही नहीं था। वे तो उस विनाश से बेखबर अपनी ही खुशियों में तल्लीन थे :

"पूर्ण अराजकता!- सत्ता थी
गुण्डों, हत्यारों के हाथ;
देख रही थी लूट मार वह
पुलिस जघन्य हँसी के साथ।
अधिकारी गण? - निज बँगलों के
भीतर थे बहु कार्य-व्यस्त।"[2]

यदि कोई पीड़ित व्यक्ति पुलिस के पास सहायता के लिये जाता भी था तो उन्हें यह कहकर टरका दिया जाता था कि वे गांधीजी के पास जाकर सहायता के लिये याचना करें। उन कर्तव्यभ्रष्ट राजनीतिक कर्मधारियों के इस दुष्टतापूर्ण व्यवहार पर कवि का क्षोभ व्यक्त हुआ है :

"गांधीजी के पास - आह! ये
निपट निन्द्य, ओछी बातें,
हँसी कर रहा दुखियों से तू
ओ निष्ठुर कर्तव्य-भ्रष्ट।"[3]

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. १९
२. वही : पृ. २५
३. वही : पृ. २६

यदि अधिकारीगण चाहते तो गुण्डे अपनी मनमानी नहीं कर सकते थे। यदि वे गंभीरतापूर्वक इस दमन को रोकने का प्रयत्न करते तो निश्चय ही कुछ पलों में यह विग्रह शांत हो सकता था। किंतु उन्हें इस अनर्थ या उत्पात से क्या लेना देना :

"कुछ हो कहीं, उन्होंने तो यह
अवसर-सा अवसर पाया;
हो अनर्थ उत्पात, बला से;
उत्सव उनके घर आया।"[1]

ये शासक इतने अत्याचारी हैं कि वे अबला नारियों एवं बच्चों पर भी घोड़े दौड़ा सकते हैं। निरस्त्रों को गोलियों से भून सकते हैं। वे अपनी इस पाशविकता को छिपाने के लिये ही हिन्दू-मुसलमानों को बर्बर बदजात कहते हैं। किंतु कवि इन शासको को भी कम दोषी नहीं मानता क्योंकि ये शासक कहने भर को अधिकारी हैं जबकि वे अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन वैयक्तिक स्वार्थ साधना में ही लीन है :

"पर तुम भी कैसे हो क्या हो ?
तुम पर भी है क्रूर कलंक;
सौ सागर भी धो न सकेंगे
तुम्हें लग गया है जो पंक।"[2]

आज ये शासक राजपाट से भी बढ़कर जनता में अपना विश्वास खो बैठे हैं। कवि का विश्वास है कि अनीति पर टीकी हुई यह राजनीतिक सत्ता अधिक दिन तक ठहर नहीं सकेगी, एक न एक दिन उसका नाश अवश्य होगा। अतः कवि इन शासकों एवं सरकारी अधिकारियों को प्रताड़ित करते हुए लिखते हैं कि अब वे अधिक समय तक शासन की स्वयोग्यता का सुख नहीं उठा सकेंगे, जनता को धोखा नहीं दे सकेंगें, क्योंकि अब धीरे धीरे जनता में भी जागृति आने लगी है :

----
१. आत्मोत्सर्ग : पृ. ३१
२. वही : पृ. ३२

Smt. Hansa Mehta Library M. S. University of Baroda

"शासन की स्वयोग्यता का अब
सुख यों ले न सकोगे तुम,
मन को दे लो, किंतु जगत को
धोखा दे न सकोगे तुम।"[१]

इस प्रकार कवि ने 'आत्मोत्सर्ग' में अराजकतापूर्ण शासन एवं सरकारी अधिकारियों के अत्याचार पर प्रहार किया है तथा सर्वत्र प्रेम एवं अहिंसा की महत्ता को प्रकट कर प्रकारांतर से नीतिपूर्ण व्यवहार का ही समर्थन किया है। उनकी दृष्टि में अन्याय के प्रतिकार का मार्ग प्रेम एवं अहिंसा है। अतः अपने ही भाइयों पर जोर आजमाना उनकी दृष्टि में अनुचित कार्य है। उनका विश्वास है कि हिन्दू-मुस्लिम की सम्मिलित शक्ति से ही सशक्त राष्ट्र की स्थापना संभव हो सकती है। गांधीजी ने भी राष्ट्रीय संगठन के लिये जातीय ऐक्य पर जोर दिया था। यहाँ भी कवि ने इसीका समर्थन करते हुए भाईचारे की भावना को विकसित करने का आग्रह प्रकट किया है।

'बापू' में भी राष्ट्र की राजनीतिक स्थिति का वर्णन स्थान स्थान पर हुआ है। कवि को छलछद्म पर आधारित राजनीति को देखकर दुःख होता है। राजनीतिक अत्याचारों से पीड़ित दलित जनता के प्रति जहाँ उन्होंने सहानुभूति प्रदर्शित की है, वहीं ब्रिटिश राज्य की दमन नीति की ओर संकेत करते हुए गांधीजी को जनता का सेवक और आश्रयदाता चित्रित किया है। जिस समय गांधीजी ने राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण किया उस समय भारतीय जनता की स्थिति अत्यंत दयनीय थी, एक ओर राजनीतिक पराधीनता से सर्वसाधारण जनता व्याकुल थी तो दूसरी ओर उन्हें सामाजिक उपेक्षा भी सहनी पड़ रही थी। हिंसात्मक विद्रोह की ज्वाला में असंख्य व्यक्तियों के भस्म हो जाने की आशंका थी। सर्वत्र हिंसा एवं अराजकता का बोलबाला था। जनता ब्रिटिश शासकों के जुल्म को मूक होकर सह रही थी, जनता की प्राणधारा शिथिल हो गई थी। सत्य के स्थान पर अनीति और अत्याचार फैल गया था।

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. ३२

ऐसे समय में युगपुरुष गांधी रक्तहीन क्रांति के अग्रदूत बनकर भारतीय राजनीति के रंगमंच पर अवतरित हुए। उनके आगमन से जहाँ राजनीति संबंधी मान्यता में परिवर्तन आया वहीं निश्चेष्ट जनता में भी जागृति आ गई। उनका मन हर्ष से पुलकित हो गया -

"आये, वह आये!" उठा हर्ष-रव;
हो गये प्रफुल्ल मुख-पद्म जन-जन के
बापू का विजय-घोष! नव नव
अंतर-कपाट खुले दृष्टि के, श्रवण के।"[१]

'बापू' ने अपनी आत्मिक शक्ति के बल पर जनता की सात्विक वृत्तियों को जागृत किया तथा जनता को अभयदान देकर उन्हें भयमुक्त बनाया इस तरह गांधीजी ने राजनीति को केवल शासक वर्ग तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि, उसे जनतंत्रात्मक रूप प्रदान किया।

'उन्मुक्त' में भी कवि ने स्वतंत्रता के लिये प्रेम एवं अहिंसा जैसे सात्विक गुणों के विकास का ही समर्थन किया है। 'उन्मुक्त' काव्य का उद्देश्य केवल युध्द के विनाशकारी रूप को प्रकट करना मात्र नहीं है। कवि का उद्देश्य देशभक्ति के उत्कट रूप एवं अहिंसा के आदर्श की स्थापना करना है। यही अहिंसा पराधीन भारत के लिये स्वतंत्रता का वरदान बन कर आई थी। गुणधर, पुष्पदंत, मृदुला और वृध्दा के चरित्रों व्दारा आत्मसमर्पण, कर्तव्यपरायणता और आत्मबलिदान का जो आदर्श हमारे सामने रखा है, हिंसात्मक अंदोलन के स्थानपर अहिंसा के पक्ष का समर्थन किया है, स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये जो मार्ग सुझाया है, उसी नीति को अपनाकर उन्हीं आदर्शों कोग्रहण कर मृदुला, गुणधर, पुष्पदंत जैसे पात्रों व्दारा हमने और हमारे देश ने स्वाधीनता प्राप्त की है। इस रूप में सियारामशरणजी ने 'उन्मुक्त' में देशप्रेम के जिस आदर्श की प्रतिष्ठा की है, राष्ट्रीयता के जिस रूप को प्रदर्शित किया है, वह सचमुच पराधीन भारत के लिये आजादी हासिल करने का समुचित उपाय है। पराधीनता

---

१. बापू : पृ. १३

से मुक्ति पाने के लिये अहिंसात्मक मार्ग का समर्थन कर गुप्तजी ने प्रकारांतर से धर्मपूर्ण राजनीति का आग्रह ही प्रकट किया है।

'अमृतपुत्र' में भी गुप्तजी ने अनैतिक राजनीति की ओर संकेत करते हुए धर्म के ठेकेदार पुजारियों के पाखण्ड पर कटु व्यंग्य किया है। ईसु यद्यपि धर्मप्राण व्यक्ति थे उनके देश के सर्वत्र अनाचार फैला हुआ था। राजा प्रजा से दूर थी और प्रजा भी राजा से दूर। राज्य अधिकारी, पुजारी और शास्त्रविद अपनी सत्ता को दृढ़ बनाने के लिये परस्पर लड़ रहे थे। यहाँ की मित्रता भी वैर के आश्रित थी और प्रेम का आधार छलछद्म में था। ऐसे पाखण्डी एवं छलछद्म से युक्त सत्ता के लोभी व्यक्ति निष्कलुष, निर्वैर और निश्छल ईसु को कैसे बर्दाश्त कर सकते। पैसे की लालच में वे इतने अनैतिक हो गये थे कि उनकी दृष्टि में गुरु, माँ, बाप किसी का भी मूल्य नहीं रह गया था :

"एक वे, पैसा जिन्हें भगवान है
चाकरी अधिकार - बल की कर रहे,
बेच देंगे गुरु तथा माँ-बाप को
घृण्यतर कुछ रौप्य खण्डों के लिये।"[1]

उक्त पंक्तियों में सत्ता के लालची अधिकारियों के अनैतिक व्यवहार पर कवि ने व्यंग्य किया है, जो स्वयं अपना दोष छिपाने के लिये निष्कलुष व्यक्ति पर मिथ्या दोषारोपण कर उन्हें अपमानित करते हैं और उन्हें मृत्युदण्ड तक देने का घोर अपराध करते हैं। कवि को छलछंद से युक्त इस अनैतिकता को देखकर क्षोभ होता है। उन्होंने प्राय: अपनी अधिकांश कविताओं में इसके प्रति आक्रोश प्रकट किया है।

'जयहिंद' कविता में भी कवि ने स्वतंत्र राष्ट्र के प्रति अपनी शुभकामना प्रकट करते हुए नीतिपूर्ण राजनीति का ही आग्रह प्रकट किया है। स्वतंत्रता के अरुणोदय के इस शुभ अवसर पर कवि यही मनोकामना करता है

----

१. अमृतपुत्र : पृ. ५०

कि यह विजय व्यक्तिमात्र की न होकर संपूर्ण जनता की विजय हो, संपूर्ण जगत की पीड़ित मानवता भयमुक्त हो। भारत सदा स्वतंत्र रहे तथा उसका शासन तंत्र नीतियुक्त बना रहे -

"भारत रहे स्वतंत्र, शुभतंत्र,
प्रभु हे, सुरक्षित हो उसका सुधर्ममन्त्र।"[१]

यहाँ गांधीजी के समान ही नीतिपूर्ण शासन तंत्र का ही समर्थन किया गया है।

'गोपिका' में भी धर्मपूर्ण राजनीति का समर्थन कवि ने किया है। दुर्जय के इस कथन द्वारा "राज्य जो जहाँ है, दस्युता की नींव पर ही टीके सब हैं" कवि इस कठोर सत्य को ही उद्घाटित करता है कि जब तक शक्ति, उत्पीड़न, शोषण पर राज्य टिके रहेंगे, तब तक मानव की स्थायी सुरक्षा संभव नहीं हो सकेगी। बाहरी प्रयत्नों से कोई भी ठोस समाधान नहीं मिल सकता। इसके लिये तो हमें उसके मूल में पैठना होगा। कवि ने इस स्थायी शांति एवं सुरक्षा की प्राप्ति का मार्ग 'श्री सुरभि पथ' के द्वारा ही इंगित किया है। सर्वजन हित का मार्ग ही समुचित है :

"स्वस्थ रखना है तुम्हें सर्व को निखिल को। रहना तुम्हें है यहीं श्री सुरभि पथ पर। संचय के साथ साथ त्याग का उपार्जन करो सप्रेम।" निस्सन्ताप जूझना है पक्ष-प्रतिपक्ष के समस्त दुर्जयों से, सभी क्रूरों से, विजय समग्र पाओ - तब तक।"[२]

इस तरह कवि ने उस समय तक अन्याय का प्रतिकार करने की घोषणा की है जब तक कि हम समस्त अनीति अत्याचार पर विजय नहीं पा लेते। किंतु कवि अन्याय के प्रतिकार का हिंसात्मक मार्ग नहीं बतलाते। उन्होंने प्रेम और त्याग के पावन साधनों से ही इन अनिष्टकारी तत्वों पर

---

१. जयहिंद : पृ. १९
२. गोपिका : पृ. २३०-२३१

विजय पाने की प्रेरणा हमें प्रदान की है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सियारामशरणजी भी स्वार्थ एवं छलछद्म से प्रेरित शासन तंत्र के स्थान पर धर्मसंमत राजनीति के ही समर्थक हैं जो कि गांधीदर्शन के सर्वथा अनुरूप है।

देशप्रेम एवं राष्ट्रीय भावना का निरूपण :

सियारामशरणजी को तत्कालीन अंदोलनों एवं युग की राष्ट्रीय चेतना ने पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है। उनकी अधिकांश रचनाएँ राष्ट्रीय गौरव की भावना से ओतप्रोत हैं। वे गांधीवाद से प्रभावित सच्चे देशभक्त थे। भारतीय संस्कृति के प्रति उनके मनमें गहरी आस्था थी। इसीलिये उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से जनमानस में महान् आदर्शों की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया। वे चाहते थे कि सब लोग भारत की अनुपम महिमा से परिचित हो जायें तथा उसकी उन्नति के लिये जी जान से प्रयत्न करें। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने 'मौर्य विजय' में स्थान स्थान पर भारत के अतीत गौरव का गुणगान किया है। कुछ लोगों की राय में "पुरानेगीत गाने से क्या लाभ ?" किंतु गुप्तजी का मानना है कि "उनसें लाभ है और विशेष लाभ है। यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हो और वह उस पर अभिमान करे तो उसका भविष्यत् भी गौरवपूर्ण हो सकता है। जो जिस बात पर अभिमान करता है – अथवा अभिमान करना सीखता है – वह एक न एक दिन उसके अनुकूल कार्य करने की चेष्टा भी कर सकता है। पतित जातियों को उनके उत्थान में उनके अतीत गौरव का स्मरण बहुत बड़ा सहायक होता है।"[1] अतीत गौरव के स्मरण का एक और कारण यह है कि "अंग्रेज कूटनीतिज्ञ भारतीय राष्ट्रीयता का विनाश करके और जनता को आत्म विस्मृत करके उसे अपनी सभ्यता और संस्कृति के रंग में रंगना चाहते थे। वे भारतीय जनता में आत्म हीनता की भावना को दृढ़ करके उसे दीर्घकाल के लिये दासत्व की श्रृंखला में जकड़े रखना चाहते थे।"[2] अतीत का वैभव परतंत्रता की इन बेड़ियों से मुक्त होने की प्रेरणा देता है। "अतीत

---

१. मौर्य विजय : भूमिका से उद्धृत

२. आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद : डॉ. शंभुनाथ पाण्डेय : पृ. ५७

गौरव का सबसे बड़ा उद्देश्य यही होता है कि दुर्दशाग्रस्त देशों में अपनी अवनति के प्रति क्षोभ का भाव जग जाय। अतीत जहाँ गौरवमय लगता है, वहाँ हमारी नसों में उत्तेजना भरता है और हमारे उचित मार्ग का दिग्दर्शन करता है।"[१] राष्ट्रीय चेतना ने ही हमारा ध्यान प्राचीन गौरवगाथा की ओर आकर्षित किया है। "गौरवमय अतीत के सहारे ही गौरवमय भविष्य के निर्माण की आशा की जा सकती थी।"[२] अत: ब्रिटिश साम्राज्य की कूटनीतिज्ञता और भीषण दमन चक्र तथा आतंक के प्रतिक्रिया रूप में कवियोंने अतीत का गौरवगान मुक्त कंठ से किया। गुप्तजी भी भारत की प्राचीन प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित करना चाहते थे, जिससे राष्ट्र के प्रति त्याग और अनुराग की भावना का प्रसार हो सके। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने प्राचीन भारतीय गौरव का गुणगान किया है तथा अतीत के वर्णन द्वारा वर्तमान की सत्वहीन होती हुई जनता में वीरता एवं निर्भीकता का संचार करने का प्रयत्न किया है। उनका मानना है कि "आत्म-विस्मृति ही देश की अवनति का मूल कारण है।"[3]

'मौर्य विजय' में गुप्तजी ने इतिहास प्रसिध्द वीर नृपवर चंद्रगुप्त की शौर्य कथा अंकित की है। कवि ने चंद्रगुप्त मौर्य के शासन काल में सामान्य जनजीवन तथा उनके पराक्रम एवं शौर्य के वर्णन द्वारा भारतीय जनता के मनमें अतीत के प्रति गौरव जगाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने भारत के अतीत-कालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष के संबंध में लिखा है कि अन्य देशोंने इसी देश से सदुपदेश पीयूष का पान किया है। इसी भूमि पर रामकृष्ण ने जन्म लिया है। ऋषिमुनियोंने ज्ञान का विस्तार किया है। यह मातृभूमि इतनी महान है कि नर तो क्या देवता भी इसको देखकर यही कहते हैं :

> "जय-जय भारतवासी कृती,
> जय-जय-जय भारत यही।"[४]

---

१. आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना : डॉ. सुधाशंकर कलवड़े पृ. १३३ से उद्धृत
२. हिन्दी काव्य विमर्श : डॉ. गुलाबराय: पृ. १९७
३. मौर्य विजय : भूमिका से : पृ. ४
४. वही : पृ. ३१

उस समय भारतवासी अत्यंत धीर एवं वीर थे। कहीं दीनता, जड़ता रुग्णता एवं विलासिता दिखाई नहीं पड़ती थी। वे सब आर्योचित कार्य ही करते थे, तथा युध्द में मृत्यु से भी नहीं डरते थे। इस प्रकार भारत विश्वभर के देशों में सर्वाधिक सम्मुन्नत देश था। सब लोग उस समय नियमपूर्वक रहते थे। शासन का सब कार्य इस तरह होता था मानो कर्म ही राजकाज करता हो।"[१] अध्र्द एशिया को विजित करनेवाला सिल्यूकस भी भारत की अपूर्व प्राकृतिक सुषमा एवं चारित्रिक उत्कर्ष से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। वह भारत के उत्कर्षात्मक चरित्र से अभिभूत हो कह उठता है :

"धीर-वीर ये भारतीय होते हैं कैसे,
किसी देश के मनुज न देखे इनके जैसे।
क्या ही उज्ज्वल गेय चरित इनके होते हैं;
ग्रीकों का भी गर्व कार्य इनके खोते हैं।"[२]

इस प्रकार सियारामशरणजी ने आध्यात्मिक उत्कर्ष, नैतिकता, उच्च चारित्र्य, सुसंस्कृत समाज, वैभवशाली संस्कृति के वर्णन व्दारा भारत की सांस्कृतिक महत्ताएवं गरिमा का ही गुणगान किया है। कवि ने भारतीय प्रकृति के अनुपम सौंदर्य से ग्रीक सेनानियों को प्रभावित दिखाकर मातृभूमि के प्रति प्रेमभाव ही प्रदर्शित किया है। एथेना भी भारत की प्राकृतिक सुषमा से अत्यधिक प्रभावित है। उसके लिये यह प्रकृति शांति एवं सुखदायिनी है। इसे नष्ट करना अनुचित है :

"है जैसी सुंदरता यहाँ,
वैसी ही सुख शांति है,
इस दिव्य देश में आप ही
पाता मन विश्रांति है।"[3]

निश्चय ही भारत का प्राकृतिक सौंदर्य अनुपम है। गुप्तजी को

---

१. मौर्य विजय : पृ. २४
२. वही : पृ. २९
३. वही : पृ. ५६

भी अपनी मातृभूमि सुखकारी-पुण्यभूमि, माता के समान वसुधा में सर्वोत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ लगती है :

"पुण्यभूमि यह हमें सर्वदा है सुखकारी;
माता के सम मातृभूमि है यही हमारी।
हमको ही क्या, सभी जगत को है यह प्यारी;
इतनी गुरुता और कहीं क्या गई निहारी ?"[1]

कवि के मनमें अपनी इस मातृभूमि के प्रति अपूर्व अनुराग है। अत: उन्होंने उसकी महिमा का गुणगान मुक्त कंठ से किया है। उन्होंने मातृभूमि की शोभा को स्वर्ग की शोभा से भी अपूर्व रूप में चित्रित किया है :

"है हम सब की मातृभूमि, भयहारिणि माता,
बस तेरा ही रूप हमें जी से है भाता।
तेरा-सा सौंदर्य सृष्टि में दृष्टि न आता;
तेरी शोभा देख स्वर्ग भी है सकुचाता।"[2]

इस तरह कवि की दृष्टि में भारतभूमि विश्व के सभी राष्ट्रों से अधिक महान है। ऐसी इस गौरवशाली भूमि की सुरक्षा का प्रश्न कवि के समक्ष उठ खड़ा होता है। गुप्तजी ने भारतीय युवकों के समक्ष देश की स्वतंत्रता को एक प्रश्नचिन्ह के रूप में रखा है तथा युवकों को देश की सुरक्षा के निमित्त स्वबलि देने के लिये भी प्रेरित किया है :

"आओ वीरो! आज देश की कीर्ति बढ़ा दें,
सब के सम्मुख मातृभूमि को शीश चढ़ा दें।
शत्रुजनों को मार यहाँ से अभी हटा दें;
उनका घोर घमण्ड सदा के लिये घटा दें।
संसार देख ले फिर हमें,
तुच्छ नहीं हैं हम कभी;
निज भारतीय बलवीर्य का
आओ, परिचय दें अभी।"[3]

---

१. मौर्य विजय : पृ. ३१
२. वही : पृ. ३३
३. वही : पृ. ३६

इस कविता में राष्ट्रहित के लिये आत्मबलिदान कर देने की भावना भी व्यक्त हुई है। ये सैनिक इतने राष्ट्रभक्त एवं वीर है कि देश के लिये अपना सर्वस्व समर्पित कर चुके हैं। उनका देशप्रेम इतना व्यापक है कि वे अपने परिवार तक को त्याग चुके हैं। उनके लिये तो रणक्षेत्र ही उनका घर है। देश के प्रति उनकी उत्कट प्रेम भावना उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त हुई है :

"हम सैनिक हैं, हमें जगत में किसका डर है ?
रणक्षेत्र ही सदा हमारा प्यारा घर है।
हृदय हमारा विपुल वीरता का आकर है,
आंगन-सा है हमें भुवन, प्रकटित सब पर है।"[१]

ये भारतीय सैनिक अत्यंत उत्साहित हो युध्द कर रहे थे। उनके धनुषों से तीक्ष्ण तीर पानी की तरह बरस रहे थे तथा वे शत्रु का संहार करने के लिये अधीर हो उठे। भारतीय रणनीति से शत्रुसेना आतंकित हो गई :

"आर्यों को काल समान हो
देखा उसने भीति से;
आतंकपूर्ण वह हो गई
भारतीय रणनीति से।"[२]

इस प्रकार सियारामशरणजीने भारतीय वीरता का गुणगान कर पराधीन हतोत्साहित भारतीय जनता में नवीन शक्ति एवं स्फूर्ति का ही संचार नहीं किया वरन् वीरपात्रों की नैतिकता व्दारा जनता को संयम और नियम का भी पाठ पढ़ाया।

'मौर्य विजय' में कविने अतीत गौरव की तुलना में वर्तमान दुर्दशा का चित्रण करके ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं मानी, बल्कि इस वर्तमान

---

१. मौर्य विजय : पृ. ३७
२. वही : पृ. ४६

दुर्दशा को समाप्त करने के लिये भी उद्‌बोधन दिया है। हम उस देश के वासी है जहाँ की जनता साहसी, निर्भीक और बलशाली है। इस पृथ्वी पर ऐसी कौनसी वस्तु है, जिससे देश वासियों की उन्नति में तनिक भी बाधा उपस्थित हुई हो। ऐसा कोई भी शत्रु नहीं है, जिसे भारतवासी जीत न सके हों। अत: भारतवासियों को इस युगमें पुन: अपने बलवीर्य का परिचय देने को तैयार रहना चाहिए। अंत में कविने भारतीयों को वर्तमान स्थिति को सुधारनेका आहवान भी दिया है। निम्न पंक्तियों में सुधार की यही भावना व्यक्त हुई है :

"गावेंगे ऐसे गीत हम
क्या फिर और किसी समय ?
फिर एक बार हे विश्व ! तुम
गाओ भारत की विजय।"[1]

इस प्रकार 'मौर्य विजय' में जहाँ अतीत की ऐतिहासिक घटनाओं को पद्यबध्द करके हिन्दू संस्कृति का गुणगान किया गया है, वहाँ भारतके नवनिर्माण के लिये भी संदेश दिया गया है। कवि ने राष्ट्र के पददलित रूप को ऊपर उठाने के उद्देश्य से ही मौर्यकालीन कथा को चुना है। संपूर्ण रचना राष्ट्रीय चेतना एवं देशानुराग की भावना से ओतप्रोत है। कवि भारत की प्राचीन संस्कृति को ही आदि संस्कृति मानता है, उनके विचार से :

"साक्षी है इतिहास, हमीं पहले जागे हैं,
जागृत सब हो रहे हमारे ही आगे हैं।"[2]

इस प्रकार 'मौर्य विजय' राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत काव्य है।

'दूर्वा-दल' की 'तुलसीदास' कविता में भी कवि का भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम और राष्ट्रीय भाव व्यक्त हुआ है। प्रस्तुत कवितामें कवि ने तुलसीदासजी के व्दारा आज से तीन सौ वर्ष पूर्व प्रवाहित भक्ति की अजस्त्र धारा की महत्ता को प्रदर्शित किया है। भक्ति की इस धारा से

---

१. मौर्य विजय : पृ. ७२
२. वही : पृ. ७०

भारत पवित्र एवं उज्ज्वल हो गया था। भारत को शुध्दता एवं उज्ज्वलता प्रदान कर यह स्वच्छ निर्मल नीर प्रवाह लुप्त हो गया था, किंतु उनके इस पुण्य अमृत सिंचन से आज भी हमारे ह्रदय हरे भरे हैं, अर्थात हमारे ह्रदय आज भी भक्तिभाव से पूरित हैं। यद्यपि इतिहास कहता है कि तुलसीदासजी को मरे तीन सौ वर्ष का लंबा अंतराल बीत चुका है किंतु उनके व्दारा प्रदत्त भक्तिभावना आज तक जनमानस में विद्यमान है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि आज भी तुलसीदासजी हमारे बीच उपस्थित हैं और भविष्य में भी फिर कभी हमें इसी जगह जन्म लेना पड़ा तब भी हम निश्चय उन्हें यहीं पावेंगे। कवि को मातृभूमि से अत्यधिक प्रेम है अत: उन्होंने यहाँ की पवित्र नदियों का तथा राम नाम की महिमाका गुणगान कर संस्कृति के प्रति अपनी आस्था को प्रकट किया है। सरयू के तटपर तुलसी ने भक्ति रस की जो धारा बहाई उससे संपूर्ण देश का जनमानस आप्लावित हो गया :

"रम्य रामचरितामृत से यह
मानस तुमने भर कर,
किया पुनीत प्रेम-मय इसको
पाप-ताप सब हर कर।"[१]

कवि तुलसीदास के समान भक्ति के श्रेष्ठ सुमनों को पाना चाहता है जिसे आराध्य देवता के चरणों में सादर समर्पित कर वह उनके प्रति भक्तिभावना को प्रदर्शित कर सके। तुलसीदासजी जैसे साधुपुरुष को प्राप्त कर कवि का सिर गर्व से ऊँचा उठ जाता है :

"तुम्हें प्राप्त कर शीश हमारा,
है अति गर्वोन्नत यह,
भक्तिभार से पद-कमलों में
होता स्वयं प्रणत वह।"[२]

इस प्रकार 'दूर्वा-दल' कविता में कवि का भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम प्रकट हुआ है।

---
१. दूर्वा-दल : 'तुलसीदास' : पृ. ५६
२. वही : पृ. ५८

'आर्द्रा' की रचनाओं के पीछे राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनोंका प्रभाव रहा है। इस संबंध में आचार्य नंददुलारे बाजपेयी का कथन उल्लेखनीय है : "असहयोग आंदोलन से उतना सीधा संबंध मैथिलीशरणजी का नहीं था जितना कि उनके छोटे भाई सियारामशरणजी का था। गांधीजी व्दारा प्रवर्तित राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन की पहली ही हलचल में सियारामशरणजी के भावुकतापूर्ण आख्यानगीत प्रकाशित हुए।"[1] इस प्रकार भारत के तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक आंदोलनों से संबध्द होने के कारण 'आर्द्रा' में संकलित अधिकांश कविताएँ विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं से संबंध्द है। 'खादी की चादर' और 'बंदी' राष्ट्रीय भावना से संबध्द कविताएँ हैं। कवि उग्रतावादी राष्ट्रीयता का समर्थक नहीं। उसके स्वदेश प्रेम में भावना का पूर्ण सामंजस्य है। 'खादी की चादर' कविता में समाज व्दारा अपमानित, पीड़ित एवं प्रताडित अभागी विधवा नारी के प्रति कवि की करुण संवेदना प्रकट हुई है। साथ ही यह कविता राष्ट्रीय भावना से भी संबध्द है। गांधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम के अंतर्गत चरखा और खादी को महत्त्व दिया था। सियारामशरणजी को खादी से विशेष प्रेम था अत: उनकी नायिका चम्पा भी चरखा चलाकर सूत बनाती हुई चित्रित की गई है। इसमें तत्कालीन युगीन प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है :

"कोने में पूनी रक्खी थी,
टिके हुए चरखे के पास;
उठा उन्हें हलके हाथों से-
ठोका, लेकर गहरी श्वास।
थोड़ी देर बाद ही, क्रम से
चरखा चलने लगा वहाँ।"[2]

'बंदी' शीर्षक कविता में भी स्वदेश प्रेम एवं राष्ट्रीयता की

---

१. आधुनिक साहित्य : भूमिका - आचार्य नंददुलारे बाजपेयी : पृ. २२
२. आर्द्रा : 'खादी की चादर' : पृ. ११९

पवित्र भावना का ही निरूपण किया गया है। इसमें अभिव्यक्त राष्ट्रीयता उग्रतावादी नहीं है, उसमें किसी दूसरे राष्ट्र के अहित की अशुभ भावना नहीं है। इसमें तो अपनी मातृभूमि की रक्षा के निमित्त प्रयत्नशील एक बंदी की समर्पण भावना का ही निरूपण है। यह सत्याग्रही अपने राष्ट्र की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता है। वह जेल नियमों का पूरे शिस्त के साथ पालन करता है। वह जेल में दिये जानेवाले कष्टों से भी पराजित या निराश नहीं होता। वह यदि चाहे तो अपने अन्य साथियों के नाम बताकर जेल के यातनापूर्ण जीवन से मुक्ति पा सकता है, किंतु वह अपने वैयक्तिक स्वार्थ के लिये अपने साथियों को जान खतरे में डालना उचित नहीं मानता। मुलाकात के लिये आया हुआ उसका साथी उसकी माँ की व्यथा बताकर उसे साथियों के नाम बताने के लिये प्रेरित करता है। किंतु उस बंदी की दृष्टि में पारिवारिक प्रेम से बढ़कर देशप्रेम का महत्त्व है, अत: वह अपनी माँ की अपेक्षा भारत माँ की पुकार को अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है और माँ की पीड़ा से कराहकर भी यही कहता है :

"आज रो रही है एक मेरी माँ;
कैसे मैं रुलाऊँ अब और बहुतेरी माँ ?....
.... अन्य साथियों का गला,
कैसे जानबूझ के फँसा दूँ भला, -
होगा शत माओं का कराल क्लेश कितना?."[१]

उसमें देशप्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना इतनी प्रबल है कि वह मातृभूमि के हित के लिये सभी कष्टों को सुखपूर्वक सहन करने को तत्पर है। वह अपनी माँ की खुशियों के लिये अपनी मातृभूमि के साथ गद्दारी नहीं कर सकता। वह अपना कलेजा थामकर अत्याचार, पीड़न एवं प्रहारों को स्वयं झेलने को उद्यत है, किंतु अपने वैयक्तिक स्वार्थ के लिये वह अपने साथियों के नाम बताना नहीं चाहता। यहाँ उसका आदर्शवादी देशप्रेमी

---

१. आर्द्रा : 'बंदी' कविता : पृ. १४५

का रूप ही अंकित है। वह मातृभूमि की रक्षा के निमित्त अपने अस्तित्व तक को मिटाने को तत्पर है।

इस प्रकार 'बंदी' कविता में आदर्शवादी चेतना की प्रतिष्ठा की गई है। जिसका मूलभाव राष्ट्रीयता है। राष्ट्रीयता के बहाने परदु:ख कातरता एवं लोककल्याण के सशक्त मानवीय गुणों का चित्रण ही इस कविता में हुआ है।

'आत्मोत्सर्ग' में भी राष्ट्रीय भावना का मुखर स्वर है। यह विद्यार्थीजी के बलिदान के अवसर पर लिखा गया राष्ट्रीय कथा काव्य है। विद्यार्थीजी के बलिदान एवं कानपुर की घटना ने कवि की राष्ट्रीय भावनाओं को झकझोर डाला था। साम्प्रदायिक विव्देश के कारण मानवता के पतन एवं विनाश को देखकर कवि के हृदय को अपार वेदना एवं क्षोभ हुआ और उन्होंने कानपुर के विषाक्त वातावरण की पृष्ठभूमि में विद्यार्थीजी के आत्मोत्सर्ग की करुण कथा अंकित की है। इस काव्य में कवि की राष्ट्रीय भावना प्रेरक तत्त्व के रूप में सक्रिय रही है। कवि का उद्देश्य मातृभूमि प्रेम, हिन्दू मुस्लिम ऐक्य तथा पारस्परिक संगठन की भावना को बलवती करना ही रहा है। कवि के सम्मुख देश की स्वतंत्रता का प्रश्न भी है। कवि ने स्वतंत्रता के निमित्त आत्मबलिदान के लिये प्रेरित करते हुए उत्तेजित भीड़ के समक्ष विद्यार्थीजी से कहलवाया है :

"हाजिर मेरा खून, तुम्हारा
फूले-फले अगर इस्लाम,
जिसकी खूबी बतलाते हो
भाई चारे का पैगाम।"[१]

कवि का विश्वास है कि हिन्दू मुस्लिम एकता से ही हमारा राष्ट्र सर्वतोमुखी उन्नति कर सकता है :

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. ६०

"अब मत भोगो, अपने हाथों,
अरे बहुत तुमने भोगा;
हिन्दू-मुसलमान दोनों का
यह संयुक्त राष्ट्र होगा।"[1]

मगर भाईचारे की भावना के लिये तो अत्यधिक प्यार व अपनेपन की भावना अपेक्षित है, जबकि हम तो अपने हाथों में नंगी तलवार लिये खड़े हैं। हम व्यर्थ में छोटी छोटी बातों में उलझकर परस्पर स्पर्धा करते व लड़ते हैं और हमारे आपसी झगडों से लाभ उठाकर कोई तीसरा व्यक्ति ही हम पर हुकूमत कर रहा है। इस प्रकार परस्पर लड़कर तो हम अपने देश की स्थिति को और भी अधिक कमजोर बना रहे हैं। अत: यदि हमें आजादी चाहिये तो हमें जातीयता की संकीर्ण कारा से मुक्त होना होगा। गांधीजी ने भी संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के निमित्त जातीय एकता पर जोर दिया था। 'आत्मोत्सर्ग' में सियारामशरणजी ने गांधीजी के इसी मत का समर्थन किया है तथा साम्प्रदायिकता के मुँह पर गहरा तमाचा मार कर राष्ट्रीय विचारधारा की सशक्त ढंग से अभिव्यक्ति की है। वे विद्यार्थीजी के निधन को राष्ट्रीय क्षति मानते हैं। इसीलिये विद्यार्थीजी की नृशंस हत्या होने पर वे उपद्रवियों को प्रताड़ित करते हुए लिखते हैं :

"अरे दीन के दीवानों हा!
यह तुमने क्या कर डाला?
अपने हाथ खून से रंगकर
किया स्वयं निज मुहँ काला!"[2]

'पाथेय' की 'असफल' एवं 'शंखनाद' शीर्षक कविताओं में भी राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हुआ है। इसमें स्वतंत्रता सेनानियों के अदम्य साहस की अनुपम झाँकी प्रस्तुत की गई है। कवि परतंत्रता की जड़ता,

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. ६१
२. वही : पृ. ६६

शोषण की प्राचीर, अत्याचारों का अंधेरा और विवशता के आँसुओं को स्वतंत्रता, समानता, न्याय और प्रसन्नता में परिवर्तित कर देना चाहता है। वह शंखनाद के द्वारा देश की निष्क्रिय एवं सुषुप्त शक्तियों को जगाना चाहता है। वह चाहता है कि शंकर रौद्र रूप धारण करके ताण्डव नृत्य कर इस हृदय में अत्यंत भयंकर विष भर दे तथा अपनी हुंकार द्वारा चिर सुषुप्त शक्तियों को जागृत कर दे। उसका दण्ड प्रहार ऐसा प्रबल हो जो मदमत्त मनुष्य के मद को चकनाचूर कर दे :

"मृत्युंजय, इस घट में अपना
कालकूट भर दे तू आज;
ओ मंगलमय, पूर्ण, सदाशिव,
रुद्र रूप धर ले तू आज!
चिरनिद्रित भी जाग उठें हम,
कर दे तू ऐसी हुंकार;
मद मत्तों का मद उतार दे
दुर्धर, तेरा दण्ड-प्रहार।"[१]

कवि वर्तमान पीड़ित व्यक्ति और क्रंदनमय राष्ट्रीय अवस्था से क्षुब्ध हो नवनिर्माण के स्वरूप की आकांक्षा कर उठता है। अत: वह शिव से अर्चना करता है कि वे ऐसी प्रलय ज्वालाएँ धधकाएँ जिसे अंधे होते हुए भी लोग देख सकें तथा इस प्रलय की ज्वाला में पड़कर जड़ता, जर्जरता एवं निस्सारता भस्मशेष हो जायं।

परिस्थितियों की कठोरता, निर्जीवता, निष्क्रियता एवं मृतशांति आज कवि के लिये असह्य हो उठती हैं। अत: वह चाहता है कि शिव क्रांति एवं प्रलय द्वारा इस निर्जीवता एवं शांति को छिन्नभिन्न कर दे जिससे इस सर्वनाश एवं पतन द्वारा नवनिर्माण की आशा की जा सके।

---

१. पाथेय : 'शंखनाद' : पृ. ११४

कवि वज्र के समान कठोरता प्रदान करने के लिये भी शिव से प्रार्थना करता है ताकि समस्त भारतीय जन भयंकर आंधी और तूफान का डटकर सामना कर सके तथा आंधी और तूफान के प्रबल झटके सहकर भी विचलित न हों :

"ओ कठोर, तेरी कठोरता
कर दे हमको कुलिश-कठोर,
विचलित कर न सके कोई भी
झंझा की दारुण झकझोर।"[1]

वज्र के समान कठोरता प्राप्त होने पर हमारे सिर पर होनेवाले कठोर प्रहार हमें सुमन समूह के प्रहार से प्रतीत होंगे तथा हमारे पैरोंतले आनेवाले काँटे हमें कोमल कमलनाल से प्रतीत होंगे। कवि कठोरता का सुदृढ़ कवच पहन कर निश्चिंत हो जूझना चाहता है। कवि की आकांक्षा है कि इस दुस्सह की दुस्सहता आज हमें स्वच्छ एवं पवित्र बना दें।

गांधीवादी होते हुए भी उनकी वाणी में प्रलय, क्रांति और विनाश का स्वर मुखरित हुआ है क्योंकि उसका मानना है कि विनाश औरपतन के द्वारा ही नवनिर्माण, नयी सृष्टि, जीवन के नये मूल्य, नयी मान्यताएँ और नये विश्वास जन्म लेते हैं। अपनी इसी मान्यता के आधार पर वह विनाश की कामना करता है :

"कुछ भी मूल्य नहीं जीवन का
हो यदि उसके पास न ध्वंस;
ओ कृतान्त, हमको भी दे जा
निज कृतांतता का कुछ अंश।"[2]

कवि पुरातनता के निर्बल अंश का नाश कर देना चाहता है, क्योंकि उसकी मान्यता है कि इसके निरंतर बने रहने से वर्तमान

---

१. पाथेय 'शंखनाद' : पृ. ११५
२. वही : पृ. ११७

निष्क्रियता बनी रहेगी। अत: वह शिव के भीषण क्रोध से पुरातनता के दुर्ग को ढहाने की आकांक्षा प्रकट करता है :

"जीर्ण शीर्णता के दुर्गों को,
कुसंस्कार के स्तूपों को
ढा दे एक साथ ही उठ कर
दुर्जय, तेरा क्रोध कराल।"[1]

अंत में कवि जीवन युध्द के लिये उपयुक्त निर्भयता का हथियार सजाने की कामना करते हुए कवि वाणी में निर्मम शंखनाद बजाने की अर्चना करता है। इसमें शंकर के तांडव की अर्चना करके कवि ने दासता की कड़ियों को तोड़ फेंकने की जिज्ञासा ही व्यक्त की है। परिस्थितियों की कठोरता, निर्जीवता एवं नृशंसता के कारण कवि का स्वर उग्रवादी हो गया जो कि युग की चेतना का ही प्रभाव है।

'असफल' कविता भी राष्ट्रीय चेतना से संबध्द है। सन् १९३० का आंदोलन असफल हुआ था। 'असफल' कविता में कवि जनमानस में आत्मविश्वास की भावना भरता दिखाई पड़ता है। वह असफलता को प्राप्त कर भारतीय जनता को संबोधित कर कहता है कि यद्यपि आज विपक्षी की विजय भेरी बज रही है, किंतु असफल होकर भी आज तेरी ही विजय हुई है। तेरे संगी साथी आज भले ही तेरा साथ छोड़ गये हैं तथा उन्होंने भले ही तुझसे मुँह मोड़ लिया हो, किंतु व्यंग्य हास की इस ढेरी से क्षुब्ध होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि :

"अविजय के इस नवावरण में
तेरी जय ही है आई,
इस कुत्सित कुत्सा के भीतर
तेरी स्तुति ही है छाई।"[2]

---

१. पाथेय : 'शंखनाद' : पृ. ११७
२. पाथेय : 'असफल' कविता : पृ. १०१

यह स्वतंत्रता सेनानी आघातों-प्रतिघातों को सहकर भी निरंतर आगे बढ़ता आया है, यद्यपि उसका गला रुंध गया फिर भी उसकी वाणी कभी कुंठित नहीं हुई, संकट का आघात सहकर उसकी दृढ़ता और भी अधिक सुदृढ़ हो गई। कवि चाहता है कि यह सेनानी अपनी पराजय से निराश न हो। अत: वह उसे आत्मविश्वास दिलाते हुए कहता है :

"जो तेरा उपहास कर रहे
आज तिरस्कृत कर तुझको,
कल ही वे तेरे कीर्तन से
गुंजित कर देंगे पथ-घाट।
होगा, हाँ निश्चय ही होगा
पूर्ण सफल तेरा शुभ-काम;
इस निष्फलता की तमसा में
बन्धु आज तू कर विश्राम।"[१]

कवि को विश्वास है कि एक दिन अवश्य उसका शुभकाम सफल होगा। अत: उसे उचित समय का इंतजार करना चाहिए।

'मृण्मयी' की कविताओं में भी गांधी विचारधारा व्यक्त हुई है। उस समय गांधीजी राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। उनके अहिंसात्मक आंदोलन का जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। 'मृण्मयी' की रचना इसी अवधि में हुई अत: इसमें संकलित कविताओं में अहिंसात्मक आंदोलन के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए कवि ने साधन की शुध्दता के प्रति ही आग्रह प्रकट किया है :

"शुचि-साधन से सिध्द उसे जिस दिन कर लेंगे,
मनचाही फिर हेमराशि से घर भर लेंगे।"[२]

---

१. पाथेय : 'असफल' कविता : पृ. १०३
२. मृण्मयी : 'पुनरपि' कविता : पृ. १२३

कवि को इस देश की मिट्टी से विशेष प्रेम है। उन्होंने 'मृण्मयी' में इस वसुधा की मिट्टी की महानता का ही गुणगान किया है।

'बापू' रचना पर भी गांधीजी द्वारा परिचालित राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव स्पष्ट है। "गांधीजी और उनके सहकारियों के निरीक्षण में स्वतंत्रता का यह महायज्ञ निरंतर चलता रहा और राजनीतिक उतार चढावों के होते हुए भी हमारी राष्ट्रीय चेतना ही अव्याहत रही। इस सर्वतोव्यापी सक्रिय राष्ट्रीयता का प्रभाव हमारे इस समय के साहित्य पर अनेक रूपों में अनेक प्रकार से पड़ा।"[१] 'बापू' में इसी सक्रिय राष्ट्रीयता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

सियारामशरणजी की राष्ट्रीय भावना गांधीजी से संबध्द है। अत: उसमें आक्रोश का पूर्ण अभाव है, शुध्द राष्ट्रीयता में जो आवेग होता है, उसका भी अभाव है। उनकी राष्ट्रीयता में सत्य अहिंसा जैसे सात्त्विक गुण सम्मिलित हैं, अन्य कवियों की भाँति उन्होंने राष्ट्र की दैनंदिन घटनाओं का ही वर्णन नहीं किया, उन्होंने तो मानव जीवन के सुख दु:ख का चित्रण किया है। 'बापू' काव्य में उनकी राष्ट्रीय चेतना कई स्थान पर अभिव्यक्त हुई है। "कहीं कवि ने भारत के हिमकिरीट के रूप में सुशोभित हिमालय, पुण्य सलिला गंगा और सस्य श्यामला भूमि को भारत की अमूल्य निधि के रूप में वर्णित किया है तो कहीं महान् विभूतियों की जन्मभूमि के रूप में इसका गौरवगान गाया है।"[२]

कवि का देशप्रेम संकुचित न होकर आंतर्राष्ट्रीय रूप धारण किये है। अपने इसी व्यापक राष्ट्रप्रेम के कारण उन्होंने बापू को विश्व की महान् विभूति के रूप में चित्रित किया है। बापू की दृष्टि में परिवार प्रेम की अपेक्षा देशप्रेम का अधिक महत्त्व था इसीलिये वे स्वतंत्रता के निमित्त अपना सर्वस्व त्याग कर महाभिनिष्क्रमण को निकल पड़े :

---

१. आधुनिक साहित्य-भूमिका-आचार्य नंददुलारे बाजपेयी : पृ. २१
२. सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. शिवप्रसाद मिश्र पृ. ११६

"तुमने पुकार सुनी, -
वन्दिनी स्वतंत्रता है क्रूर-मुखी कारा में.....
..... छोड़ सब तुच्छ स्वार्थ,
हे सिध्दार्थ,
छोड़ तुम नेह-गेह-धन को,
छूट पड़े नूतन महाभिनिष्क्रमण को।"[1]

इस प्रकार बापू ने स्वतंत्रता प्राप्ति के हेतु अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। वे भयंकर से भयंकर परिस्थिति में भी अचल रहे :

"झंझावात आते हैं प्रचण्ड रोष गति से,
मुक्त असंयति से ,
उच्चशीर्ष कितने महीरुहों को जड़ से
पकड़ पकड़ के
ऊपर उछाल कर धूलि मिला जाते हैं,
निम्न भूमितल को,
कम्पन-विभीत तुम्हें एक भी न झलकी।"[2]

इन पंक्तियों में जहाँ सत्याग्रही की दृढ़ता एवं निर्भीकता का चित्रण हुआ है वहीं भूचाल के वर्णन व्दारा कवि ने देश की राजनीतिक हलचल की ओर संकेत किया है। देश में राजनीतिक चेतना को जागृत कर निर्भयता का मंत्र फूंक देना गांधीजी की सबसे बड़ी देन है। बापू के अभयदान का ही सुपरिणाम था कि कारागार जो पहले घृण्य समझे जाते थे, वे देवगृह बन गये।

कवि ने तत्कालीन राजनीतिक स्थिति की ओर संकेत करते हुए मानवीय पाशविकता का चित्रांकन किया है। एक राष्ट्र किस तरह दूसरे

---

१. बापू : पृ. ३४
२. वही : पृ. २२

राष्ट्र को पददलित कर साम्राज्यवाद की चेष्ठा करता है इसका हृदयग्राही चित्रण कवि ने इसमें किया है :

"उसकी करालमुखी तृष्णा का नहीं है पार,
विषम दुरंत शापजन्या-सी
होकर अदम्य अग्नि वन्या-सी
दुर्विलंघ्य दुर्निवार
फैल रही, फैलती ही जाती है,
तृप्ति नहीं पाती है
निगल समूचे के समूचे देश।"[1]

राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर ही कवि ने भारत माता की कल्पना विश्व माता के रूप में की है। जिसके हृदय में संपूर्ण मानवता के प्रति दर्प है और जिसकी मनोकामना है कि इस विश्व का हिंसानल द्वारा दहन एक क्षण के लिये ही रूक जावे :

"माता ! यह माता विश्वमाता है !
इसके हृदय बीच उमड़ा-सा आता है
दुख-शोक-ताप विश्व भर का।"[2]

कवि ने तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का वर्णन करते हुए ब्रिटिश राज्य की दमनपूर्ण नीति की ओर भी संकेत किया है। कवि ने भारत के उज्ज्वल भविष्य के प्रति भी आस्था व्यक्त की है। कवि के आस्थावादी दृष्टिकोण का मुख्य कारण महात्मागांधी के सफल नेतृत्व के प्रति अडिग विश्वास ही है।

इसमें भारत की उदारता एवं विश्वबंधुत्व भावना का भी समर्थन किया गया है। गांधीवाद की प्रमुख विचारधारा विश्वबंधुत्व भावना पर ही आश्रित है। निम्न पंक्तियों में कवि ने बापू की विश्वबंधुत्व भावना को ही प्रकट किया है। वे केवल अपने राष्ट्र का ही नहीं बल्कि सारे संसार का

---

१. बापू : पृ.३९
२. वही : पृ.७१

कल्याण चाहते हैं। इसीलिये भारत के प्रेम और उदारता के आदर्श की सराहना करके समस्त संसार में उसे व्यापक बनाने की कामना व्यक्त की गई है :

"इसका उदार दान
सब को दिये हैं प्रेम
सबका लिये है क्षेम;
संकुचित बंधन का
इसमें नहीं है लेश;
फैलकर होने इसको दे तू भुवन का।"[1]

'बापू' काव्य के प्रारंभ में भी कवि ने इसी राष्ट्रीय एकता की ओर संकेत किया है :

"एक राष्ट्र यह एक प्राण-मन
छिन्न-भिन्न कर सौ सौ बंधन,
अखिल विश्व में एक सूत्र बन
अनायास उद्भूत है आज।"[2]

गांधीजी का देशप्रेम अत्यंत व्यापक था। उसमें दूसरे राष्ट्र का अहित करने की भावना नहीं थी, बल्कि वे सभी राष्ट्र की कुशलता की कामना करते रहे। उनमें सर्वोदय की भावना थी। सियारामशरणजी ने 'बापू' में गांधीजी की इसी सर्वोदय भावना का समर्थन करते हुए इस भावना को संपूर्ण विश्व में फैलाने की कामना व्यक्त की है।

'आश्वस्त' कविता में भी कवि का देशप्रेम ही व्यक्त हुआ है। आज संसार में जो संकीर्णता की भावना व्याप्त है। सर्वत्र हिंसा एवं लूटपाट हो रही है उससे जीवन पूर्णतया अरक्षित हो गया है। सर्वत्र वैर की विषम

---

१. बापू : पृ. ६८
२. वही : पृ. १०

ज्वालाएँ फैली है, ऐसे में गांधीजी प्रेम के द्वारा वैर के विरोध का नया मार्ग सुझाते हैं। कवि को इस कलह काण्ड से होनेवाले सर्वनाश को देखकर क्षोभ होता है, किंतु फिर भी वह इस वसुधा को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाना चाहता, क्योंकि उसे इस वसुधा से अनन्य प्रेम है :

"इतना यह चारों ओर संकुचितपन है,
कितना यह चारों ओर परापहरण है।
सम्पूर्ण अरक्षित आज यहाँ जीवन है,
किस नये प्रेम से वैर-विरोध-वरण है।
इस वसुधा को मैं प्यार करूँगा तब भी,
इस पर जो यह उन्मुक्त असीम गगन है।"[१]

'पृथ्वी' कविता में पृथ्वी की अखण्डिता एवं व्यापकता की ओर संकेत करते हुए कवि ने हमारी संकीर्ण मनोवृत्ति पर प्रहार किया है। गांधीजी के समान कवि की राष्ट्रीयता भी व्यापक रूप लिये है। वह देशकाल की भौगोलिक सीमा से परे आंतर्राष्ट्रीय रूप धारण कर लेती है। यह धरा अत्यंत व्यापक एवं अखण्डित है, किंतु मनुष्य ने अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण उसे खण्डों में विभक्त कर अपने पराये का भेद निर्मित किया है जो कि अनुचित है। इस खण्डित अवस्था के कारण ही आपसी द्वन्द्व उठ खडे होते हैं। कवि ने पृथ्वी की अखण्डिता की ओर संकेत करते हुए लिखा है :

"यह अवनी कितनी व्यापक है अतुला निस्संकोचा,
रवि किरणों का मापदण्ड वह पड़ जाता है ओछा।"[२]

यह धरती भिन्न भिन्न वेश धारण किये दिखाई देती है। किंतु हमने उसे छोटे छोटे खण्डों में विभक्त कर दिया है :

---

१. दैनिकी : 'आश्वस्त' कविता : पृ. ५१
२. दैनिकी : 'पृथ्वी' कविता : पृ. ३८

"इस अखण्डिता को बाँटा है देशों-परदेशों में।
जो समीप में है अपने के, वह अपनी है सारी,
नहीं दूर का देख रहे हम, छोटी दृष्टि हमारी।"[१]

इस कविता में कवि ने हमारी संकीर्ण मनोवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए अंतरर्राष्ट्रीय भाव विकसित करने की प्रेरणा दी है।

'नोआखली में' भी राजनीतिक घात प्रतिघातों की प्रतिक्रिया को व्यक्त करनेवाली कुछ रचनाएँ संकलित हैं। उन्होंने इन कविताओं में सांप्रदायिकता की भर्त्सना करते हुए देश की जातीय एवं सांस्कृतिक एकता के प्रति आग्रह प्रकट किया है। प्रारंभ में मैथिलीशरण गुप्त की एक कविता संकलित है जो भारत देश के प्रति प्रशस्तिगान के रूप में चित्रित है, इसमें भारतीयों को एकता के सूत्र में बंधने का आहवान किया गया है :

"सुख से रहना है तो सबको
मिल जुलकर रहना होगा,
हमें तुम्हारा, तुम्हें हमारा
दुःख स्वयं सहना होगा।"[२]

'मातृभूमि के प्रति' कविता में कवि ने भारत की दुर्दशा का चित्र अंकित किया है तथा साम्प्रदायिक दंगों का विरोध किया है। आज भारत को अपनी ही संतानों की काली करतूतों के कारण विदेशियों के सम्मुख नतमस्तक होना पड़ा है। गांधीजी भी भारत की परतंत्रता के लिये भारतीय जनता को ही जिम्मेदार ठहराते हैं। निम्न पंक्तियों में देशकी दुर्दशा का जिम्मेदार भारतीयों को ही ठहराया है :

"तेरे ही तनुजात रहे वे रही न जिनको लाज।
थे ऐसे का पुरुष कि लेकर संख्या का बल दर्प
अबलों, अबलाओं को लूटा, गिरी न उन पर गाज।"[३]

---

१. दैनिकी : 'पृथ्वी' कविता : पृ. ३८
२. नोआखली में : मैथिलीशरणजी व्दारा रचित कविता से।
३. नोआखली में : मातृभूमि के प्रति : पृ. ११

'एक हमारा देश' में ऊँचे झंडे के नीचे दी गई कुर्बानी का गुणगान किया गया है। स्वतंत्रता के निमित्त न जाने कितने ही वीरों ने आत्म-बलिदान दिया है। कवि इस झंडे की आन को बनाये रखना चाहता है। वह सबका हित, सबका मंगल चाहता है :

"सबका सुहित, सुमंगल सबका, नहीं है वैर-विद्वेष,
एक हमारा ऊँचा झंडा, एक हमारा देश।"[1]

कवि चाहता है कि यह झंडा बिना किसी विरोध के ऊँचा फहर उठे तथा सब में साहस, अभय और पौरुष का संचार करता रहे, यह हमें मिलन तीर्थ का संदेश दे। इस प्रकार 'नोआखली में' कवि के देश की एकता एवं संस्कृति के प्रति प्रेम ही प्रकट हुआ है।

'जयहिन्द' में भी राष्ट्रीय भावना की सुंदर रूप में अभिव्यक्ति हुई है। यह कृति स्वतंत्रता के अरुणोदय के अवसर पर रची गई थी। प्रारंभ में कवि ने प्रकृति के अनंत वैभव की पृष्ठभूमि में भारत देश की महानता की ओर संकेत किया है। कवि ने स्वतंत्रता के स्वागत में स्वतंत्र भारत वर्ष का जयगान करते हुए लिखा है :

"जय जय भारत वर्ष हमारे,
जय जय हिन्द, हमारे हिन्द,
विश्व-सरोवर के सौरभमय
प्रिय अरविन्द, हमारे हिन्द।"[2]

इसके मनमें किसी के प्रति वैरभावना नहीं है, बल्कि सभी के प्रति समान प्रेम की भावना है। यहाँ गंगा यमुना जैसी पवित्र नदियाँ बहती हैं। स्वतंत्रता के इस शुभ अवसर पर कवि की यही मनोकामना है कि भारत वर्ष की चक्रपताका सदैव आकाश में स्वतंत्रतापूर्वक लहराती रहे। कविका

---

१. नोआखली में : 'एक हमारा देश' कविता : पृ. ५१
२. जयहिन्द : पृ. ३

विचार है कि सबका शुभहित ही हमारा भी हित है। अर्थात् सब की भलाई में ही हमारी भी भलाई अंतर्निहित है। हम सब लोग सार्वभौम एवं सर्वजनीन हैं। अत: हम अपनी इस आसिन्धु धरा में हीन होकर नहीं जीयेंगे। देश के स्वतंत्र होने पर भी कवि को गौरवशाली परंपरा की पावनता का स्मरण होता है। पराधीनता से मुक्त होकर कवि का मन गौरवान्वित हो उठता है और उसके हृदय का हर्ष इन उद्गारों में प्रकट होता है :

"आज आत्म गौरव की हानि नहीं,
अंतस में दासता की ग्लानि नहीं,
लौह श्रृंखलाएँ नहीं पैरों में न हाथों में,
उज्वल विजय दीप्ति माथों में।"[१]

भारत को यह स्वतंत्रता दान रूप में नहीं मिली है। बल्कि भारतीयोंने इसे शुध्द साधन से प्राप्त किया है। भारत ने अहिंसात्मक मार्ग से इसे आत्मिक शक्ति एवं पराक्रम से पाया है। आज का यह अतुल योग मात्र संयोग नहीं है, बल्कि सहस्त्रों वर्षों की अनवरत साधना के फलस्वरूप यह स्वतंत्रता का योग हमें प्राप्त हुआ है। भारत का यह नवोदित रूप किसी राष्ट्र या जाति की प्रगति में बाधक नहीं है, भारत में स्वतंत्रता का अरुणोदय सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की पवित्र मंगल भावना को लेकर ही हुआ है। यह तो स्वतंत्रता के जयरथ में बैठकर सर्वजन हित पालन के पथ में मांगलिक यात्रा है :

"सर्वहित पालन के पथ में
मांगलिक यात्रा है स्वतंत्र जय रथ में।"[२]

सियारामशरणजी अपने राष्ट्र के साथसाथ दूसरे राष्ट्रों की उन्नति की कामना करते हैं। वास्तव में भारत की विजयध्वनि में विश्वशांति की कामना ही अंतर्निहित है। भारत का एकमात्र लक्ष्य विश्वशांति ही रहा है, इसीके निमित्त उसे न जाने कितने अत्याचार सहन करने पड़े :

---

१. जयहिन्द : पृ. ५
२. वही : पृ. १२

"भारत हे, तेरी जयध्वनि में,
विश्वशांति की घोषणा-सी है अवनि में।"[1]

भारत विश्वबंधुत्व की विराट् भावना से अनुप्राणित है तभी तो उसने अपनी भुजाओं को पसार कर संपूर्ण विश्व को अपना कुटुम्ब घोषित किया :

"तूने किया घोषित भुजा पसार
एक ही कुटुम्ब विश्व भर का।"[2]

इन पंक्तियों में गांधीवादी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का ही समर्थन हुआ है। भारत ने अपनी स्वतंत्रता को एक देश की बंधन मुक्ति के रूप में नहीं मनाया, उसने अपनी मुक्ति को साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद से परतंत्र सभी देशों की मुक्ति का प्रतीक माना। उन्होंने 'जयहिन्द' में सभी राष्ट्रों को आश्वस्त करते हुए कहा :

"आश्वसित सब हों!
भय है किसी को नहीं भारत की जय से,
भीत न हो कोई नवोदय से;
भारत स्वतंत्र है, स्वतंत्र सभी जब हों।"[3]

उनका विश्वास है कि सब का कल्याण करके ही कोई राष्ट्र अपना कल्याण कर सकता है। "कर उसका उन्नयन स्वयं उन्नत होंगे हम" में यही भावना दिखाई देती है। लोकमंगल की इस भावना से श्री सियारामशरणजी का समस्त काव्य ओतप्रोत है। इसीलिये वे किसी एक जाति या राष्ट्र के कवि न होकर जन जन के कवि हैं। इस प्रकार संपूर्ण कृति देशप्रेम एवं राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है।

सियारामशरणजी का संपूर्ण साहित्य ही देशप्रेम, समाज सेवा और

---

१. जयहिन्द : पृ. १३
२. वही : पृ. १४
३. वही : पृ. १५-१६

राष्ट्रीयता के पवित्र आदर्शों से ओतप्रोत है। 'उन्मुक्त' में भी राष्ट्रीयता का ही उच्च आदर्श अभिव्यक्त हुआ है। इसमें देशभक्ति का प्रबल रूप हमें देखने को मिलता है। प्राय: सभी पात्र देशभक्ति की पवित्र भावना से अनुप्रेरित हैं। कवि ने लौहद्वीप द्वारा कुसुमद्वीप पर आक्रमण और कुसुमद्वीप के नागरिकों को साहस और दृढ़तापूर्वक उसका प्रतिरोध करते हुए चित्रित कर प्रकारांतर से अंग्रेजों के विरुद्ध सन् १८५७ के हमारे स्वाधीनता संग्राम का वर्णन ही किया है। यद्यपि इस संघर्ष में भारत की पराजय ही हुई थी किंतु गांधीजी द्वारा निर्दिष्ट अहिंसा मार्ग को अपनाकर अंत में हम गुलामीसे मुक्त हुए। 'उन्मुक्त' में भी स्वतंत्रता प्राप्ति के निमित्त अहिंसामार्ग के औचित्य को ही प्रकट किया गया है। लौहद्विप से युद्द के दौरान कुसुमद्वीप को असफलता का मुँह देखना पड़ता है। इस पराजय को विजय में बदलने के लिये पुष्पदंत गांधीवादी अहिंसानीति को ही अपनाते हुए चित्रित किया गया है।

पुष्पदंत, मृदला, गुणधर, ज्ञानधर आदि सभी पात्र देशप्रेम की पुनीत भावना से अनुप्राणित हैं, उनके व्याज से कवि ने वास्तव में अपनी उत्कट देशभक्ति का ही परिचय दिया है। लौहद्वीप का आक्रमण होनेपर पुष्पदंत वीरोचित उल्लास से भर उठता है, मृदुला अनन्य देशभक्ति के कारण पुत्र और पति की चिंता न करते हुए राष्ट्र की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती है तथा अपना कर्तव्य पूरा करने के लिये पुत्र के निधन के शोक को भूलकर देश के लिये चंदा मांगने निकल पड़ती है। वृध्दा देशभक्ति से प्रेरित हो अपनी अंतिम पूंजी भी भेंट कर देती है। गुणधर भी अहिंसक व्रतधारी है वह अपने राष्ट्र की सुरक्षा के लिये सब कुछ समर्पित कर देता है और पुष्पदंत द्वारा दी जानेवाली यातनाओं को भी चुपचाप सहन करता है। इन चरित्रों के महान व्यक्तित्व से देश के लाखों करोडों नवयुवक, नवयुवतियाँ, बालक, वृध्द, देशभक्ति की नई स्फूर्ति एवं प्रेरणा से अभिभूत हो उठते हैं। स्वाधीनता संग्राम में सचमुच हमें पुष्पदंत जैसे देशप्रेमी युवक, मृदुला जैसी कर्तव्यपरायण नारियों एवं वृध्दा जैसे त्यागीजनों एवं गुणधर जैसे सत्याग्रहियों

की आवश्यकता थी। ऐसे आदर्श चरित्रों के त्याग एवं साधना के बल पर ही हम स्वतंत्रता हांसिल कर सके।

इस प्रकार 'उन्मुक्त' काव्य के माध्यम से कवि ने राष्ट्रीयता की भावना को ही प्रश्रय दिया है। कुसुमव्दीप् के रूप में उन्होंने भारतवर्ष का ही जयगान किया है। शत्रु से उसीकी रक्षा के निमित्त प्रतिज्ञा धारण की है :

"पावन कुसुमव्दीप, यह है हमारा ही।
यह है हमारा, हाँ हमारा, हाँ हमारा ही।
प्राण रहते हों, रहें; जायें, यदि जाते हों;
तो भी कभी जाने नहीं देंगे किसी वैरी के
हाथों में कदापि इसे। इसके निमित्त ही
तन-मन और धन अर्पित हमारे हैं।"[१]

सियारामशरणजी देशद्रोह को पाप समझते हैं तथा इस कार्य की निंदा करते हैं। कवि ने 'उन्मुक्त' में ज्ञानधर के माध्यम से देशद्रोही रणंजय को पापी कहलाकर तथा मृदुला के मुख से इस कार्य की भर्त्सना कर इसकी निंदा की है।

'अमृतपुत्र' में भी सियारामशरणजी ने साम्प्रदायिकता या संकुचित प्रादेशिकता छोड़कर आंतर्राष्ट्रीय भावना से प्रेरित हो अपने ह्रदय के स्वर झंकृत किये हैं। संक्षेप में, सियारामशरणजी का संपूर्ण काव्य राष्ट्रीय भावनासे ओतप्रोत है। उसमें भावना का पूर्ण ताप है तथा देशप्रेम की अपूर्व गरिमा भी है।

<u>सत्याग्रह का महत्व एवं सत्याग्रही के निर्भय रूप का अंकन :</u>

सत्य और अहिंसा का रचनात्मक रूप ही 'सत्याग्रह' है। "गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह आत्मशक्ति या प्रेमशक्ति का पर्यायवाची है। इस प्रकार

---

१. उन्मुक्त : पृ. ४०

सत्याग्रह अहिंसक साधनों व्दारा सच्चे ध्येय की साधना है।"[१] सत्याग्रह में किसी अधर्म, अनीति या अत्याचार का अहिंसात्मक मार्ग से विरोध किया जाता है। सत्याग्रह व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकार का होता है। व्यक्तिगत स्तर पर सत्याग्रह आध्यात्मिक साधना में सहायक होता है और समष्टिगत रूप में वह समाज कल्याण की साधना है। सत्याग्रह का उद्देश्य व्यक्ति और समाज के दोषों को दूर कर दोनों के बीच में प्रेम संबंध स्थापित करना है। त्याग, तपस्या और कष्ट सहन व्दारा प्रतिपक्षी के ह्रदय को परिवर्तित कर उसकी सुषुप्त मानवीय चेतना को जाग्रत करना ही इसका मूल लक्ष्य है। इससे स्पष्ट है कि सत्याग्रह में घृणा, दुर्भावना आदि के लिये कोई स्थान नहीं है।

सत्याग्रह के पथ पर चलनेवाले को सत्य अहिंसा का पालन करने के लिये 'त्याग' की भावना से अनुप्रेरित होना चाहिए। उसे प्राणों का उत्सर्ग करने को भी तत्पर होना पड़ता है। बलिदान के महत्व को प्रतिपादित करते हुए रामनाथ सुमन ने लिखा है - "सत्याग्रह व्दारा मृत्युवरण परलोक में पुण्य संचय करने नहीं, पर इहलोक में मलिनता चरित्र शुध्दि व्दारा उज्वल मनुष्यत्व की संभावना पैदा करने के लिये जरूरी है।"[२] सत्याग्रह में बुराई को भलाई से क्रोध को प्रेम से, झूठ को सच से और हिंसा को अहिंसा से जीतने का आग्रह है। इसमें सत्याग्रही अपने विरोधी के प्रति प्रेम पूर्ण व्यवहार कर स्वयं कष्टसहन कर उसके ह्रदय को परिवर्तित करता है। विपक्षी के प्रति घृणा की भावना इसमें कतई नहीं होती। सत्याग्रह पालन के लिये शरीरबल की अपेक्षा नैतिक बल अपेक्षित है। "सत्याग्रह नैतिक शस्त्र है और उसका आधार है शरीर शक्ति की अपेक्षा आत्मशक्ति की श्रेष्ठता।"[३]

'मौर्य विजय' में इसी आत्मशक्ति या नैतिक शक्ति के महत्व को प्रतिपादित किया गया है। चंद्रगुप्त को अपनी आत्मिक शक्ति पर पूरा

---

१. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव : डॉ. अरविंद जोशी पृ. ८८
२. गांधीवाद की रूप रेखा : गांधीदर्शन सूत्रावली : रामनाथ सुमन : पृ. १९०
३. सर्वोदय तत्वदर्शन : श्री गोपीनाथ धवन : पृ. १२९

भरोसा है, वह जानता है कि ग्रीक सैनिक भी बलवान एवं शक्तिशाली है, किंतु उसे आर्यों की आत्मशक्ति पर भरोसा है। अत: उसे पूर्ण विश्वास है कि धर्म के इस युध्द में जीत अवश्य आर्यों की होगी :

बोले नृप – "गुरुदेव, जय श्री हम पावेंगे,
विफल-मनोरथ शत्रु शीघ्र ही हो जावेंगे।
समझे जाते यदपि ग्रीक भी हैं बलधारी,
पर आर्यों की आत्मशक्ति अब भी है भारी।"[1]

सत्याग्रही के लिये समर्पण की भावना अनिवार्य है। इसमें भय या कायरता के लिये स्थान नहीं है। युध्द क्षेत्र से पीठ दिखाकर भागना कायरों का कर्म है। सच्चे शूर तो डटकर मुकाबला करते हैं। 'मौर्य विजय' में यूनानी सेनानियों को युध्द क्षेत्र से भयभीत हो पीछे हटते हुए देख सिल्यूकस उन्हें वीरोचित कर्म की ओर प्रेरित करता है :

"बता रहे हैं भीरु तुम्हें ये शत्रु तुम्हारे,
क्योंकि युध्द से भाग रहे तुम भय के मारे।
होकर कातर और भीत प्राणों के डर से,
पीछे हटते भला वीर भी कहीं समर से ?"[2]

सत्याग्रही के लिये निर्भय होना आवश्यक है। 'मौर्य विजय' में निर्भयता एवं आत्मसमर्पण की यह भावना सैनिकों के गीतों में सुंदर रूप में अभिव्यक्त हुई है। इन सैनिकों ने देश हित के लिये घर, परिवार तथा मृत्यु का भय तक त्याग दिया है। उनके अदम्य आवेग के सामने मार्ग की विघ्न बाधाएँ भी नगण्य हैं। वे तो तूफानों का सामना करते हुए निरंतर आगे बढ़ते रहना चाहते हैं :

---

१. मौर्य विजय : पृ. २४
२. वही : पृ. ४७

"हम सैनिक हैं, हमें जगत में किसका डर है ?
रण क्षेत्र ही सदा हमारा प्यारा घर है।"[1]

x x x x

है पृथ्वी में कौन वस्तु वह जिसके द्वारा-
हो सकता गतिरोध तनिक भी कभी हमारा।"[2]

इन पंक्तियों में उनकी दृढ़ता का ही निरूपण हुआ है। ये सत्याग्रही वीर देश को स्वतंत्र बनाने के लिये विजय का मोल चुकाना भी जानते हैं। मातृभूमि को स्वाधीन बनाने के लिये सर्वस्व न्यौछावर कर देना वे अपना अहोभाग्य समझते हैं। 'मौर्य विजय' के ये सैनिक भी अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता को पूर्ववत बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील दिखाई देते हैं :

"आओ! वीरों आज देश की कीर्ति बढ़ा दें,
सबके सम्मुख मातृभूमि को शीश चढ़ा दें।"[3]

मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिये शहीद हो जाना सत्याग्रही के लिये गौरव का विषय है।

'बंदी' शीर्षक कविता में भी सत्याग्रही के निर्भय रूप की झाँकी प्रस्तुत की गई है। वह राष्ट्र रक्षा के निमित्त अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता है। जेल नियमों का पूरे सिस्त के साथ पालन करता है। जेल की यातनाओं को सहकर भी उसके मनमें इन कष्टों से मुक्त होने की कामना पैदा नहीं होती :

भाई, क्या करूँ मैं भ्रांत मन को,
जो गले लगा रहा है बंधनों के बंधन को ?
पाता यह सुख ही,
मर्दित हो पीड़ा त्रस्त, रोग ग्रस्त-जन सा।"[4]

---

१. मौर्य विजय : पृ. ३७
२. वही : पृ. ३८
३. वही : पृ. ३९
४. आर्द्रा: 'बंदी' कविता : पृ. १३३

वह मातृभूमि के लिये घर परिवार तक का त्याग कर देता है। यहाँ तक कि अपनी माँ को कष्टपूर्ण जीवन जीने के लिये छोड़ देता है। वह अपने देश से गद्दारी करना अनुचित मानता है तथा दृढ़तापूर्वक कर्तव्य मार्ग पर निरंतर आगे बढ़ना चाहता है। 'आत्मोत्सर्ग' में भी कवि ने सत्याग्रही के निर्भय रूप का ही प्रदर्शन किया है तथा हिंसा के ऊपर सत्याग्रह की ही विजय दिखाई है। सत्याग्रह के सहारे ही क्षीणकाय विद्यार्थीजी हिन्दुओं को मुसलमानों पर अत्याचार करने से रोकने में सफल हुए। उन्होंने निर्भयतापूर्वक अपने जीवन को संकट में डालकर विपक्षियों के हृदय को परिवर्तित कर दिया :

"आग लगेगी यदि इस घर में
तो यह, प्रथम जलूँगा मैं,
मेरा दृढ़ निश्चय है, इससे
नहीं कदापि टलूँगा मैं।"[१]

उन्होंने वैयक्तिक रूप से यह सत्याग्रह किया था तथा उसका प्रभाव यह हुआ कि हिन्दुओं का क्रोध तुरंत शांत हो गया :

"अभयदान पाकर विभीत जन
निकले घिरे हुए घर से;
दुख से परिवर्तित हो सुख में,
अविरल अश्रु-सुमन बरसे।"[२]

गांधीजीने भी "सत्य, प्रेम और शांत मौन कष्ट सहन द्वारा जब जब आवश्यकता हुई निडर होकर हिंसा के मुख में जाकर बहुत से दुराग्रही प्रतिपक्षियों का हृदय परिवर्तन किया।"[3] विद्यार्थीजी ने हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य की अग्नि को शांत करने के लिये आत्मोत्सर्ग कर दिया। उनका यह बलिदान व्यर्थ नहीं गया। वे मरकर भी अमर हो गये :

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. ४६
२. वही : पृ. ४७
३. सर्वोदय तत्वदर्शन : गोपीनाथ धवन : पृ. १३४

"अपने तनु को खाद बनाकर
अमर बीज तुमने बोया।
नहीं बुझेगी चिता तुम्हारी,
उसकी यह ज्वलंत ज्वाला।"[1]

'शंखनाद' में भी स्वतंत्रता सेनानियों के अदम्य साहस की झाँकी दृष्टव्य है :

"सिर के ऊपर के प्रहार सब
सुमन-समूह-समान झड़ें,
पैरों के नीचे के काँटे
मृदु-मृणाल से जान पड़ें।"[2]

'बापू' में भी सत्याग्रही के निर्भय रूप का अंकन किया गया है। बापू जैसे महान् सत्याग्रहियों के प्रवेश से कारागृह भी धन्य हो गया। वह घृणायोग्य कारागृह अब देश स्वातंत्र्य का मुक्ति द्वार बन गया। बापू ने कारागृह को सत्याग्रहियों के लिये सहज ग्राह्य बना दिया :

"सबको सहजगम्य
देवगृह है वह सदा प्रणम्य।"[3]

इस प्रकार बापू की प्रेरणा से वे कारागृह देवगृह बन गये। 'उन्मुक्त' में भी सत्याग्रही के निर्भय रूप एवं मौन कष्ट सहन का निरूपण किया गया है। पुष्पदंत के द्वारा बंदी बनाये जाने पर गुणधर चुपचाप बंदी बन जाता है। वह इस बंधन से विचलित नहीं होता, बल्कि वह इसे अपनी मुक्ति ही समझता है। अन्याय का प्रतिकार करना वह अपना परम कर्तव्य मानता है :

"सैनिक है क्रीतदास; अच्छी बुरी बातों में,
वह चुपचाप है परानुगत सर्वदा।

---

१. आत्मोत्सर्ग : पृ. ७१
२. पाथेय : 'शंखनाद' कविता : पृ. ११५
३. बापू : पृ. ३७

आज्ञा के न मानने का फल मिलता है क्या,
यह भी भले प्रकार जानता हूँ; तब भी
मेरा एकमात्र वही उत्तर है।"[1]

अंत में उसका अहिंसात्मक व्यवहार ही पुष्पदंत का हृदय परिवर्तन कर देता है। वह भी अहिंसा मार्ग का राही बन जाता है।

असहयोग आंदोलन का महत्व :

असहयोग का उद्देश्य सरकार को आत्मपीड़ा व्दारा परिवर्तित करना और उसे समानता पर आधारित आर्थिक सामाजिक नयी पध्दति लाने के लिये बाध्य करना है। गांधीजी शोषकों का हृदय परिवर्तन आत्मशुध्दि व्दारा करना चाहते थे। गांधीजी शोषण का कारण केवल शोषक को ही नहीं मानते, बल्कि शोषित वर्ग का सहयोग भी कुछ हद तक सहायक होता है। जब तक शोषित वर्ग अन्याय का प्रतिकार नहीं करेगा, तब तक शोषण नहीं रुकेगा। सियारामशरणजी ने भी अन्याय के प्रतिकार का आग्रह प्रकट किया है। गांधीजी के समान गुप्तजी ने अन्याय के प्रतिकार का अहिंसात्मक मार्ग ही बताया है। उनका विचार है कि विश्वकल्याण के लिये सर्वस्व दान करना ही पर्याप्त नहीं है, अन्याय का प्रतिकार या दोषी को दण्डित करना भी अत्यंत आवश्यक है। 'गोपिका' में सत्यभामा इन्द्राणी के अनुचित व्यवहार का प्रतिकार करती हुई चित्रित की गई है। वह इन्द्राणी की वैयक्तिक संपदा पारिजात को सर्वजनीन बनाने के साथ साथ, सर्वहित के महत् उद्देश्य के लिये पारिजात के साथ कृष्ण को भी समर्पित कर देती है। इंदु भी स्वस्ति के प्रति किये गये अन्याय का प्रतिकार करते हुए दिखाई गई है। वह कृष्ण के आगमन के महासुख को त्याग कर स्वस्ति के उध्दार के लिये निकल पड़ती है :

"वृंदवाटिका नहीं है बध्द इसी घेरे में – मैं प्रत्यक्ष देखती हूँ स्वस्तिधाम में भी उसे अविकल। जाऊँगी, अकेली अभी जाऊँगी, दुर्जय हो,

---

१. उन्मुक्त : पृ. १३२

चाहे क्रूर-देख लूँगी । सामना करे जो किसे साहस है ।"[१] इस प्रकार कवि ने युगचेतना से प्रभावित होकर अन्याय के प्रतिकार का चित्र यत्र तत्र अंकित किया है ।

'जयहिन्द' कविता में कवि ने गांधीजी व्दारा चलाये गये सविनय अवज्ञा आंदोलन के औचित्य का समर्थन करते हुए लिखा है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये किये गये अहिंसात्मक आंदोलन अत्यंत महान और प्रभावशाली थे, स्वतंत्रता के लिये न तो याचना की गई थी और न दीन हीन की करूण पुकार के रूप में उसका आह्वान ही किया गया था । सविनय अवज्ञा आंदोलन में साध्य और साधन की पवित्रता का पूर्ण ध्यान रखा गया था । इसमें अंग्रेजों के प्रति छल अथवा विश्वासघात नहीं था, गांधीजी ने तो मात्र अधिकारों की माँग के लिये ही इन्हें संचालित किया था :

"तेरा मार्ग था न किसी डाकू का;
छिपकर पीछे से चलाये गये चाकू का
काम न था तुझको;
तेरा युध्द
लक्ष्य और साधन में एक-सा रहा विशुध्द ।"[२]

गांधीजी के अहिंसात्मक आंदोलन में शत्रु के प्रति अहित की भावना नहीं थी, उसमें तो शत्रु के लिये भी प्रेम एवं कुशलता की मंगल भावना अंतर्निहित थी :

"लड़ते हुए भी पग पग में
देता ही गया हो जो विपक्षी को सदिच्छा-प्रेम,
चाहा जिसने हो शत्रु का भी क्षेम,
एक क्षण को भी वैर-विष से
आई मोह-मूर्छा न हो अंतस में जिसके ?"[3]

---

१. गोपिका : पृ. २१७
२. जयहिन्द : पृ. ९-१०
3. वही : पृ. १०

बापू की इसी अहिंसक नीति का ही यह सुपरिणाम था कि अंग्रेजों का हृदय परिवर्तन हो गया। "जागा शत्रु में से मित्र सहजात, अंधकार में से जिस भाँति उठता है प्रात।"[१] इन पंक्तियों में कवि ने इसी ओर संकेत किया है।

'शुभागमन' शीर्षक कविता में भी कवि ने गांधीजी व्दारा चलाये गये अहिंसात्मक आंदोलन के प्रभाव की ओर संकेत किया है। गांधीजी के आगमन के पूर्व आवर्जन के ढेर हमारे आँगन में फैले हुए थे। ऊपरी तौर पर तो हम स्वच्छ, निर्मल एवं पवित्र दिखाई दे रहे थे, किंतु हमारे हृदय भीतर से कालिमायुक्त एवं मलिन थे। मनुष्य स्वयं को उच्च सिध्द करने की कोशिश कर रहा था, किंतु वास्तव में मलिनता एवं दुंर्भावना से युक्त उसका हृदय एवं शरीर अस्पृश्यों से भी निकृष्ट हो गया था। देश का वातावरण विषाक्त हो गया था एवं मानवता गर्हित हो गई थी। मानव जीवन में सर्वत्र जड़ता एवं चेतनाशून्यता व्याप्त हो गई थी। किंतु गांधीजी ने अहिंसात्मक आंदोलन व्दारा जनता में नवचेतना का संचार कर दिया, उन्होंने जनता में आत्मविश्वास को जागृत कर दिया उनके मार्गदर्शन में जनता कुछ कर गुजरने को तत्पर हो उठी :

"मधुर हुआ तेरी वाणी में
आकर विप्लव का हुंकार;
जा पहुँचा उरके भीतर वह
करके कितने ही स्तर पार।
पड़े पंगु-से थे अब तक जो
प्रस्तुत हैं चल पड़ने को;
तू आगे आगे है पथ के
काँटों का क्या सोच--विचार ?"[२]

इस प्रकार गांधीजी ने अहिंसात्मक आंदोलन के व्दारा हिंसा के

---

१. जयहिन्द : पृ. ९
२. पाथेय : 'शुभागमन' कविता : पृ. १०६

बादलों को छिन्न करके पीड़ित मानवता को अभयदान देकर उनमें नूतन जीवन की आशाओं को जागृत कर दिया। गांधीजी के इन अहिंसात्मक आंदोलनों का जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ा तथा उनकी वाणी के मृदु प्रहार से हमारी बुध्दि पर पड़े ताले टूट गये। इस प्रकार कवि ने अपनी अधिकांश कविताओं में अहिंसात्मक आंदोलन के औचित्य को प्रकट कर गांधीवाद का ही प्रबल समर्थन किया है।

जनसत्तात्मक राजनीति का समर्थन :

गांधीजी ने जनतंत्रात्मक शासन नीति पर जोर दिया था। उनका मानना था कि प्रत्येक राजनीतिक कार्य में भारत के प्रत्येक व्यक्ति की आवाज होनी चाहिए। जनसत्तात्मक राज्य का अर्थ ही प्रजासे चलानेवाला राज्य है। उसमें प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से आवाज रहती है। 'जयहिन्द' में कवि ने जनतंत्रात्मक नीतिका समर्थन करते हुए लिखा है कि स्वतंत्रता का वरदान इस बात में सर्वाधिक है कि उसने भारतीयों को हीनता भाव से सर्वथा मुक्त कर दिया है। भारत में जनतंत्रात्मक सरकार की स्थापना गरीब किसानों और मजदूरों को सत्ता सौंपने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण थी। भारत में जनसत्तात्मक सरकार की स्थापना के फलस्वरूप गरीब किसान और मजदूरों को भी अपनी स्वतंत्र सत्ता भुगतने का अवसर मिला। गरीब जनता भी यह सोचकर प्रसन्न हो उठी -

"जागृत सभी के सब जान गये
निज का स्वरूप पहचान गये
मान गये, प्रकट हमारी भी महत्ता है,
हाथ में हमारे वह सत्ता है-
जिसके समक्ष सभी राजों अधिराजों की
सेना के तुरंत शस्त्र साजों की
हीन हैं, हतप्रभ हैं, कुण्ठित हैं-
गतियाँ।"[१]

---

१. जयहिन्द :पृ. १३

इस प्रकार मिट्टी एवं घासफूस से निर्मित झोपड़ों में रहनेवाले कृशकाय किसान तथा काष्ट की पुतलियों के समान दूसरों के इशारों पर नाचनेवाले मजदूर भी जागृत हो अपनी सत्ता एवं स्वरूप को पहचान गये। आज देश के ये सभी स्वजन पूर्ण मात्रा में एकत्रित हो नवीन जययात्रा में सहयात्री बने हुए हैं। इस प्रकार जनतंत्रात्मक राज्य की स्थापना से गरीबों एवं मजदूरों का हीनताभाव भी नष्ट हो गया है।

सर्वोदय की भावना :

गांधीजी का संपूर्ण दर्शन सर्वोदय की इसी भावना पर आधारित है। उसमें सबके उदय की भावना अंतर्निहित है। सियारामशरणजी ने भी अपने अधिकांश काव्यों में लोक मंगल की इसी भावना का निरूपण किया है। 'बापू' काव्य में कवि ने गांधीजी की इसी सर्वोदय भावना की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि बापू के रुदन में विश्व वेदना का महापारावार स्थित है और बापू की प्रसन्नता में विश्व प्रसन्नता अंतर्निहित है। वे सबके लिये सहज साध्य हैं, सबके लिये सदा अबाध्य है। उनके लिये कोई भी मानव पराया नहीं है, वे संपूर्ण विश्व के हैं और संपूर्ण विश्व उनका अपना है। उनका प्रेम संपूर्ण विश्व को प्राप्त है। बापू का उदार दान सबको समान रूप से प्रेम प्रदान कर रहा है। वे सब देश काल की कुशलता की कामना करते रहे, सबके उध्दार का प्रयत्न करते रहे। सियारामशरणजी बापू की इसी सर्वोदय भावना को संपूर्ण विश्व में फैलाना चाहते हैं अतः वे अपने देश को संबोधित कर कहते हैं :

"इसका उदार दान
सबको दिये है प्रेम
सबका लिये है क्षेम;
संकुचित बंधन का
इसमें नहीं है लेश;
फैल कर होने इसको दे तू भुवन का।"[1]

---

१. बापू : पृ. ६८

'एक हमारा देश' कविता में भी कवि ने सर्वजन हिताय की भावना को व्यक्त कर प्रकारांतर से गांधीजी के सर्वोदय को भावना को ही वाणी प्रदान की है। कवि चाहता है कि द्वेष एवं वैर की भावना का अंत हो तथा सबका कल्याण एवं मंगल हो :

"सबका सुहित, सुमंगल सबका, नहीं वैर-विद्वेष,
एक हमारा ऊँचा झंडा, एक हमारा देश।"[१]

कवि ऊँचनीच के भेदभाव से ऊपर उठकर भारतीय संस्कृति की परंपरा को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहता है। अतः कवि ऊँचे झंडे की छत्रछाया में सबको सुख सुविधा के समान उपभोग की इच्छा व्यक्त करता है :

"चक्खेंगे इसकी छाया में रस-विष एक समान
एक हमारी सुख-सुविधा है, एक हमारा क्लेश।"[२]

इन पंक्तियों में सर्वजन हिताय एवं सर्वजनों के उध्दार की भावना ही व्यक्त हुई है।

'जयहिन्द' में भी कवि ने स्वतंत्र भारत को अपनी जिम्मेदारी के प्रति सचेत करते हुए यही कहा है अब भारत स्वतंत्र हो गया है। उस पर महान उत्तरदायित्व है, उसे मात्र निज का भार वहन करते हुए भूमि के पतंगों के समान और आत्मलीन कूहुकते हुए पक्षियों के समान केवल आत्मस्वार्थ को लेकर ही उड़ान नहीं भरनी है, उसे 'स्व' के सीमित घेरे से निकलकर 'पर' के विस्तृत दायरे में प्रवेश करना है। समस्त देश की जनता के हिताहित का उत्तरदायित्व भी अब उसी पर है। अतः अब भारत का ध्येय सबका ध्येय होना चाहिए :

"लेकर स्वभार मात्र, भूमि के पतंगों-सी
आत्मरत कूकते विहंगों की

---

१. नोआरवली में : पृ. ५१
२. वही

निज के लिये हो नहीं भरनी तुझे उड़ान।
तेरा ध्येय, ध्येय है धरातल का,
तेरा श्रेय श्रेय है सकल का।"[1]

भारत ने अंग्रेजों के शासन में जो कुछ यातनाएँ सही है, तथा आसक्त या लोभी शासकों के दुर्दमन में जो कुछ सहा है उसका बोध उसे भली भाँति है। कवि चाहता है कि अब स्वतंत्र भारत का यह शासन तंत्र शोषण एवं दमन के पीड़न से पूर्णतया मुक्त जनतंत्रात्मक राज्य हो, जिसमें जनता की अपनी सत्ता हो तथा उनके उध्दार का पुनीत लक्ष्य हो।

'गोपिका' में भी सर्वजन हिताय की भावना को ही व्यक्त किया गया है :

"ताप यह शीतल हो,
मेरा व्रत संबल हो,
सर्वजन मंगल हो।"[2]

इन पंक्तियों में यही भाव प्रकट हुआ है।

<u>उपसंहार</u> :

संक्षेप में, सियारामशरणजी के काव्यों का अनुशीलन करने पर यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि सियारामशरणजी पर गांधीवादी राजनीतिक विचारों का तथा राष्ट्रीयता की भावना का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उन्होंने गांधीजी व्दारा चलाये गये सत्याग्रह अंदोलन के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए नीतिपूर्ण राजनीति का ही समर्थन किया है तथा राजनीति के अनीतिपूर्ण हथकण्डों के प्रति गहरा क्षोभ व्यक्त किया है। उन्होंने जनतंत्रात्मक राज्य की ओर भी संकेत किया है तथा सर्वजन हिताय के चरम लक्ष्य को लेकर सर्वोदय के प्रति आग्रह भी प्रकट किया है। अन्याय के प्रतिकार का अहिंसात्मक मार्ग ही सूझाया है। इस प्रकार सियारामशरणजी के काव्य में गांधीवादी राजनीति और राष्ट्रीयता की भावना का सफल अंकन हुआ है।

---
१. जयहिन्द : पृ. १५
२. गोपिका : पृ. ४०